निवेदन ।

भाइयो ! एक तो वह प्राचीन समय था कि जब यह भारतवर्ष सर्व गुणागार और सर्व शिरोमणि था और एक यह समय है कि अब इस देशकी दशा सब देशोंसे गिरी हुई है। इसका कारण यही है कि पहिले तो यहाँ बड़ी बड़ी संस्थाएँ, जातिसेवा और देशसेवाके उत्तमोत्तम कार्य करके देशोन्नति कर रही थीं। परन्तु इस समय देश-सेवा और देशोन्नतिके उत्तमोत्तम कार्य करनेवाली उन संस्थाओंका अभाव हो गया है। दो-चार संस्थाएँ हैं भी, परन्तु हम लोग उनकी भी कुछ सहायता नहीं करते—किन्तु उन्हें घृणाकी दृष्टिसे ही देखते हैं। हमने अपने पूर्वजोंके सब रीतिरिवाज त्याग दिये हैं और अब हम अपने मनमानी करने लग गये हैं। इसीसे देशकी यह अधोदशा हुई है।

यह पुस्तक इसीलिये रची गई है कि इसको पढ़कर लोग संस्थाओंके श्रेष्ठ गुणों, और लाभोंको जानें और उन्नतिकी मूल इन संस्थाओंकी तरफ़ कुछ ध्यान दें; जिससे इस अधःपतित देशकी उन्नति होवे। इसकी भाषामें उर्दूके शब्द भी आ गये हैं क्योंकि यदि संस्कृत और हिन्दी शब्दोंका ही प्रयोग किया जाता तो भाषा कठिन और क्लिष्ट हो जानेसे यह पुस्तक सर्व साधारणको लाभदायक नहीं हो सक्ती थी इसीलिये अधकचरी भाषा लिखी गई है। यद्यपि इस छोटीसी पुस्तकमें संस्थाओंका पूर्ण वृत्तान्त नहीं लिखा जा सका है तो भी आवश्यक विषयोंपर यथासम्भव विचार किया गया है। यदि किसी महाशयको कोई विषय समयविरुद्ध अथवा अरोचक जान पड़े तो उसे दृष्टि-गत न करके उत्तम और सारभूत विषय ही ग्रहण किया जायगा, ऐसी ही आशा है क्योंकि सज्जनगण दोषोंको छोड़कर गुण ही ग्रहण किया करते हैं। यदि इस पुस्तकको देश भाई अपनावेंगे तो लेखक अपने परिश्रमको सफल समझकर कोई अन्य पुस्तक रचनेका प्रयास करके देशसेवा और जातिसेवा करनेकी संभावना करता है।

निवेदक—"समाजसेवक" **दौलतराम बी० जे०**

झालरापाटन केम्प.

और देशभक्त बनाओ और उन्हें मरनेसे और अन्य धर्मी होनेसे बचाओ। यदि अनाथालयोंके कार्यकर्ता चतुर, विद्वान्, देशहितैषी और अनुभवी होवें तो सब अनाथ बच्चोंको सदाचारी, देशभक्त, परोपकारी, धर्मप्रचारक और जातिसेवक बना सक्ते हैं जिनसे कि सब देशको उद्धार होनेकी आशा की जा सक्ती है। अनाथाश्रमका प्रत्येक बालक स्वामी दयानंद, स्वामी अकलंक और निकलंक, स्वामी शंकराचार्य बनकर देशकी और धर्मकी उन्नति कर सक्ता है। हमारे विचारसे अनाथालयोंसे ही इस देशका अधिक सुधारा और उपकार हो सक्ता है। क्योंकि इन संस्थाओंका प्रत्येक बच्चा उम्रभर वहाँके कार्यकर्ताओंके आधीन रहता है-कार्यकर्तागण उससे रातदिन जो काम लेना चाहें ले सक्ते हैं। परन्तु कार्यकर्ताओंके अशिक्षित, मूर्ख, धर्मभ्रष्ट और स्वार्थी होनेपर अनाथाश्रमके सब बालक मूर्ख, धर्मशून्य, मतलबी, देशद्रोही, बेइमान, "पीर बवर्ची भीशती खर" ही बनकर निकलते हैं। अनाथाश्रम जैसी उत्तम संस्थाओंको सुधारनेके लिये सब जातिहितैषी और देशहितैषी भाइयोंको अवश्य ही कोशिश करनी चाहिये। क्योंकि एक एक अनाथ बच्चा उचित शिक्षा पानेसे एक एक महात्मा और देशभक्त बनकर अपनी सब आयु जातिसेवा और देशसेवा करनेमें बिता सक्ता है। सब मनुष्योंका यही श्रेष्ठ कर्तव्य है कि वे हर समय अनाथाश्रमों और यतीमखानोंकी सहायता करते रहैं। दयानंद-अनाथालय अजमेर, जैन-अनाथाश्रम दिल्ली, वैश्य-यतीमखाना मेरठ आदि कई ऐसी संस्थाएँ हैं जो सुधारी जानेपर देशका उद्धार और उपकार कर सक्ती हैं।

—व्यायामशालाएँ (अखाड़े) और स्पोर्टिंग क्लब—

तंदुरुस्ती बनी रखनेके लिये, बलकी रक्षा करनेके लिये और बल बढ़ानेके लिये ही ये संस्थाएँ बनाई जाती हैं। आरोग्यता और बलसे ही संसारके छोटे बड़े सब काम हो सक्ते हैं। निर्बल और रोगी मनुष्य

संस्थाएँ ।

संस्थाएँ हमको अपने धर्म और कर्तव्यपर स्थिर रखती हैं और उनपर दृढ़ रहना सिखाती है—संस्थाका अर्थ स्थिर रखनेवाली और ठहरानेवाली है। संस्थाएँ लौकिक और पारलौकिक उन्नतिके लिये ही स्थापित की जाती हैं। सामाजिक और धार्मिक उन्नतिकी जड़ संस्थाएँ ही हैं। जिस देशकी संस्थाएँ उत्तम और कर्तव्यपरायण होती हैं उस देशमें सब तरहकी उन्नति सहजहीमें होसक्ती है। परन्तु जिस देशमें संस्थाएँ नहीं हैं अथवा नाममात्रकी दो चार संस्थाएँ हैं वह देश उन्नति नहीं किन्तु अवनति ही करता है। अमेरिका, जापान, इङ्गलेण्ड, इटाली इत्यादि देशोंमें उत्तमोत्तम संस्थाएँ बहुत अधिक हैं जो बहुत होशियारीसे जातिसेवा और देशसेवाका कर्तव्य पालन करती हुई स्वदेशोंकी उन्नति कर रही हैं और उन देशोंको यथार्थ लाभ पहुँचा रही हैं। परन्तु खेद है कि इस भारतवर्षमें देशसेवा और जातिसेवा करके इस देशको लाभ पहुँचानेवाली दो-चार भी उत्तम संस्थाएँ नहीं हैं। और जो दो-चार साधारण संस्थाएँ हैं भी तो उनकी कोई क़द्र नहीं करता और न कोई उन्हें सहायता ही देता है। प्रेममहाविद्यालय वृन्दावन, श्रीजैनसिद्धान्तपाठशाला मुरेना इत्यादि संस्थाएँ इस समय भी देशोन्नतिमें सहायता कर रही हैं। जैसे शरीरके सब अंग और प्रत्यंग अपना अपना कर्तव्य पालन करके शरीरकी रक्षा और उन्नति करते रहते हैं इसी तरहसे संस्थाएँ देशके अंग और प्रत्यंग हैं। देशकी रक्षा और उन्नति इन्हींपर निर्भर है। संस्थाएँ कई

प्रकारकी होती हैं । मुख्य मुख्य संस्थाओंका यहाँ कुछ बयान किया जाता है ।

—: ब्रह्मचर्य-आश्रम अथवा गुरुकुल :—

ये संस्थाएँ सुखकी कुंजी और उन्नतिकी जड़ कही जा सक्ती हैं। अज्ञानियोंको ज्ञानवान् और बलवान् बनानेकी मेशीनें ये ही संस्थाएँ हैं । धार्मिक और लौकिक दोनों प्रकारकी विद्याएँ सिखानेवाली येही संस्थाएँ हैं । सच तो यह है कि मनुष्य जीवनको सफल करने और आनंदमयी बनानेवाली येही संस्थाएँ हैं । जिस मनुष्यने गुरुकुलमें रहकर अपने बलकी रक्षा और वृद्धि नहीं की और लौकिक और पारलौकिक ज्ञान प्राप्त नहीं किया वह मनुष्य न तो इस जन्महीमें सुखसे जीवन बिता सक्ता है और न परलोकमें ही सुख पा सक्ता है। पहिले हर स्थानपर ऐसी संस्थाएँ मौजूद थीं । बच्चे आठ वर्षके होते ही गुरुकुलोंमें पढ़नेको भेज दिये जाते थे । इन गुरुकुलोंमें हजारों ब्रह्मचारी बालक अपने बलकी रक्षा और वृद्धि करते हुवे परोपकारी और जातिहितैषी महात्माओंसे धार्मिक और लौकिक विद्या सीखा करते थे । ये आश्रम और गुरुकुल शहरों और ग्रामोंसे बहुत दूरपर जंगलमें बने हुवे होते थे। यदि बच्चोंके मातापिता बच्चोंसे मिलना चाहतेथे तो गुरुकुलोंमें जाकर बच्चों-से कुछ देरतक मिल लिया करतेथे परन्तु बच्चोंको नगरोंमें या ग्रामोंमें जानेको आज्ञा नहीं दी जाती थी। ब्रह्मचारियोंके लिये स्त्रियोंको देखना भी बंद था। और तो क्या उनको स्त्रीके चित्र तक देखनेकी आज्ञा नहीं थी। यह सब कुछ उनको सदाचारी, बलवान् और ज्ञानवान् बनानेके वास्ते किया जाता था । पच्चीस वर्षकी उम्र तक तो सभीको पढ़ना पड़ता था और निर्धन और धनवान् सब एक तरहसे जीवन बिताते थे--किसीमें कुछ भिन्नभाव नहीं समझा जाता था । गुरुकुलोंके संरक्षक अथवा उस्ताद

लोग कुछ तनख्वाह लेकर नहीं किन्तु विना कुछ द्रव्य लिये ही अमीर-गरीब सबको बराबर समझकर पढ़ाते थे।

विद्यार्थियोंने जागकर गुरुदेवका वंदन किया।
निजनित्य कृत्य समाप्त करके अध्ययनमें मन दिया॥
जिस ब्रह्मचर्य्य व्रत विना हैं आज हम सब रो रहे।
उसके सहित वे धीर होकर वीर भी हैं हो रहे॥
पढ़ते सहस्रों शिष्य हैं कुछ फ़ीस ली जाती नहीं।
वह उच्च शिक्षा तुच्छ धनपर वेच दी जाती नहीं॥
(भारतभारती)

गुरुकुलोंमें भेजे जानेसे पहिले बच्चोंको उनकी माताएँ पढ़ाती थीं अथवा वे बच्चे प्रारम्भिक पाठशालाओंमें पढ़ा करते थे, जो कि प्रत्येक शहर और ग्राममें हुआ करती थीं। आठ वर्षकी आयु तक अपने ही घरपर अथवा उन पाठशालाओंमें शिक्षा पाकर सब बच्चे फिर गुरुकुलोंमें भेजे जाते थे। वहाँ कमसे कम पच्चीस वर्षकी उम्र तक तो सबको ही पढ़ना पड़ता था परन्तु कोई कोई छत्तीस वर्षकी और कोई अड़तालीस वर्षकी उम्र तक भी पढ़ते थे। पढ़ाई पूरी हो जानेपर ब्रह्मचारी बालक घरपर आते थे और उनका विवाह उतनी ही पढ़ी लिखी रूपवती और गुणवती कन्याओंसे किया जाता था और तब वे वनको त्याग कर नगरोंमें और ग्रामोंमें रहने लगते थे।

वे जायँ जबतक गुरुकुलोंमें ज्ञानका घर है जहाँ।
तबतक उन्हें कुछ कुछ पढ़ाती आप माताएँ यहाँ॥
है ठीक पुत्रोंके सदृश ही पुत्रियोंका मान भी।
क्या आजकीसी है दशा जो हो न उनका ध्यान भी?"
(भारतभारती)

पाठको! इन गुरुकुलोंकी ही कृपासे यह भारतवर्ष उस समय

श्रेष्ठ गुणोंका घर और सब विद्याओंका ख़ज़ाना था। उस समय अक्सर सभी मनुष्य चौदह विद्याएँ और चौंसठ कलाएँ सीख कर सच्चे मनुष्य बना करते थे। परन्तु इस समय इस देशमें गुरुकुलों और ब्रह्मचर्याश्रमोंका अभाव है। यही कारण है कि देशकी दशा इतनी गिरी हुई है और देशसे उत्तम गुण, श्रेष्ठ विद्याएँ और कलाएँ लोप हो गई हैं और यह देश सब दुःखों और आपदाओंका घर बन गया है। यदि यह देश अपनी उन्नति चाहे तो ऐसे ही गुरुकुल और ब्रह्मचर्य्य-आश्रम प्रत्येक नगरके पास स्थापित करे और जो लोग विद्याकी क़द्र जानते हों वे अपने बच्चोंको पुरानी रीतिके अनुसार उनमें रखकर पढ़ावें।

बीजगणितके रचयिता यूक्लिड (Euclid) महाशयसे किसी राजपुत्रने पूछा कि रेखागणित सीखनेकी और भी कोई सरल रीति है? तब यूक्लिड महाशय बोले कि "There is only one common road to Geometry" अर्थात् रेखागणित सीखनेका सबके लिये केवल एक ही मार्ग है—अमीरोंके लिये कोई और सहल रीति नहीं है। इस तरह उन्नतिका भी केवल एक ही मार्ग सबके लिये महात्माओंने बताया है। उस मार्गको छोड़कर अन्य सीधा मार्ग ग्रहण करनेपर उन्नतिके दर्शन नहीं हो सक्ते। दो-चार संस्थाएँ इस समय भी कुछ देशसेवा कर रही हैं। जैसे गुरुकुल वृन्दा-बन, गुरुकुल हरिद्वार, श्रीऋषभब्रह्मचर्य्य—आश्रम हस्तिनापुर इत्यादि। परन्तु जिन चौदह विद्याओं और चौंसठ कलाओंको उन संस्थाओंके संचालक स्वयं नहीं जानते फिर कैसे आशा की जावे कि वे लोग उन उत्तम विद्याओंको देशके बच्चोंमें फैला सक्ते हैं? इन प्रत्येक संस्थाओंमें कमसे कम हजार हजार विद्यार्थी तो होने चाहिये थे परन्तु प्रत्येक संस्थामें सौसे भी कम विद्यार्थी विद्या पढ़ रहे हैं। इनही दोनों

कारणोंसे ये संस्थाएँ देशकी यथार्थ उन्नति नहीं कर सकी हैं। सवाल यह होता है कि देशकी यथार्थ उन्नति कैसे हो ? इसका उत्तर यही कि प्रत्येक स्थानपर गुरुकुल स्थापित किये जावें और यह काम इसी तरहसे हो सक्ता है कि प्रथम तो इन वर्तमान संस्थाओंकी यथार्थ उन्नति की जाय। वर्तमान गुरुकुलोंमें जितने विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं उन सबको जातिसेवा और देशभक्ति सिखाना चाहिये और प्रत्येक विद्यार्थीको इसी बातपर जमाना चाहिये कि वह अपने ग्रामके निकट एक गुरुकुल खोलकर उसे चलावे और अपना देशसेवाका कर्तव्य इसी तरह पालन करे। अथवा सब त्यागी, विरागी, देशहितैषी महात्मा उत्तम विद्याएँ स्वयं सीखकर प्रत्येक स्थानपर गुरुकुलोंकी स्थापना करें और स्वयं ही उनका काम चलावें।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि जब इनेगिने दो-चार गुरुकुलोंकी सहायता ही यह देश नहीं कर सक्ता है तो इतने अधिक गुरुकुलोंकी सहायता और रक्षा इस देशसे कैसे हो सकेगी? इसका उत्तर यही है कि संस्थाओंके खर्च बहुत अधिक बढ़ रहे हैं। संस्थाओंको तो बहुत ही कम खर्चसे काम चलाना चाहिये और लोभी, आलसी कार्यकर्ताओंकी जगह निर्लोभी, अनुभवी, उद्योगी, परोपकारी, और देशभक्त कार्यकर्ता रखने चाहिये। यदि ऐसे उत्तम कार्यकर्ता न मिल सकें तो कुछ समयमें संस्थाओंको ऐसे कार्यकर्ता स्वयं तैयार कर लेने चाहिये। विद्यार्थियोंके खानपान वस्त्रादिका खर्च भी बहुत कम कर देना चाहिये। दूध मलाई इत्यादि न खिलाकर रोटी सागसे ही उनका निवाह करना चाहिये, कोट कमीज न पहिनाकर एक लंगोट और एक चद्दरसे ही उनके शरीरको ढकना चाहिये, राजा महाराजाओंकी हवेलियोंके सदृश ब्रह्मचारियोंके रहनेकी हवेलियाँ न बनवा कर फूसकी टट्टियोंके नीचे रहनेकी ही उनकी बान डालना चाहिये, गद्दी

तकियोंपर आराम करना छुड़ाकर केवल पृथिवीपर घास बिछाकर सो रहना ही ब्रह्मचारियोंको सिखाना चाहिये। ये ही उत्तम उपाय प्रत्येक स्थानमें गुरुकुल और ब्रह्मचर्य-आश्रम स्थापित करनेमें सहायक हो सक्ते हैं वर्तमान आश्रमकी उन्नति कर सक्ते हैं और उन्हें चिरस्थाई बना सक्ते हैं।

यदि कोई कहे कि देश इन संस्थाओंको सहायता नहीं दे सक्ता है तो देश बावन लाख ऐसे अपात्र फकीरोंको तो सहायता दे रहा है जो देशका कुछ भी उपकार न करके केवल अपकार ही कर रहे हैं और उन संस्थाओंकी सहायता नहीं करता जो इस देशकी सच्ची सेवक और भक्त हैं। तो क्या यह बात न्याय और विद्वत्ता-की है? और तब इस देशमें सहायता करनेकी शक्ति कैसे नहीं है? हमारे विचारसे इस देशमें अभी तक तो सब कुछ शक्तियाँ वर्तमान हैं परन्तु यह उन्हें उचित रीतिसे काममें लाना नहीं जानता है। अतः आवश्यकता इस बातकी है कि इस देशको अपनी शक्तियोंका सदुपयोग करना सिखाया जावे, हानिकारक और अनिष्ट कामोंसे इसका ध्यान हटाकर लाभदायक कामोंकी तरफ खींचा जावे। पुराने समयमें इस देशकी दशा अच्छी होते हुवे भी संस्थाएँ कितने कम खर्चसे चलाई जाती थीं इसको सब कोई जानते हैं परन्तु देशकी दशा इस समय सब बातोंमें गिरी हुई होनेपर भी संस्थाओंको अधिक खर्चसे चलाना उनके कार्यकर्ताओंकी बुद्धिमानीको सूचित करता है। हे भाइयो! यदि कोई किसी कामको सच्चे दिलसे चलाना चाहै तो लाखों विघ्न होते हुवे भी उसे चला सक्ता है परन्तु नहीं करनेके सैकड़ों बहाने हैं। जिस समय कि उनके मन्तव्यको जानने और मान-नेवाला कोई नहीं था किन्तु सब कोई उनका विरोध करनेवाले थे। तो भी उन महात्माओं और प्राचीन ऋषियोंनें जिस कामको करना

चाहा सब विघ्नोंको दूर करते हुवे और कठिन दुःख सहते हुवे भी उसी कामको करके छोड़ा। इसी तरह कोई देशहितैषी महात्मा प्रत्येक स्थानपर उत्तमोत्तम संस्थाएँ खुलवा कर उन्हें चलानेका दृढ़ प्रण कर लेवे तो अपार विघ्नोंको पार करके सैकड़ों रुकावटों के होते हुवे भी अपना प्रण पूरा कर सक्ता है। आजकल संस्थाएँ अपना नाम होने और अपनी कीर्ति फैलनेके लिये ही खोली जाती हैं न कि जातिसेवा व देशसेवा करके, अपना कर्तव्य पालन करनेको। अथवा प्रथम तो इसी जातिसेवाके, और देशसेवाके उद्देशको सन्मुख कर संस्थाओंकी स्थापना की जाती है परन्तु स्थापना हो जाने और कार्य चल निकलनेपर अपना उद्देश बदल दिया जाता है। इन्हीं कारणोंसे संस्थाओंको उचित सहायता नहीं मिलती है। गुरुकुलोंके कार्यकर्ता और संचालक विद्वान्, बुद्धिमान्, अनुभवी, निःस्वार्थी, निर्लोभी, परोपकारी, त्यागी, देशभक्त और जातिसेवक होने चाहिये।

विद्यालय और पाठशालाएँ।

ये संस्थाएँ विद्याप्रचारके लिये स्थापित की जाती हैं। ये संस्थाएँ उन बच्चोंको लौकिक और पारलौकिक विद्याएँ सिखाती हैं जो कि कई कारणोंसे गुरुकुलोंमें रहकर विद्या नहीं पढ़ सक्ते हैं। सच पूछो तो गुरुकुलोंको नाश करनेवाली ये ही संस्थाएँ हैं। जब बालकोंको सब कुटुम्बके साथ रखकर भी विद्या पढ़ाई जाने लगी तो फिर घर और नगरके आराम, सैर सपाटों, मेलों ठेलोंको त्याग कर जानवरोंकी तरह वनमें रहना कौन पसंद कर सकता है! बस गुरुकुलोंकी इतिश्री हो गई, मातापिताओंको लाड़ प्यार और दुलार बालकोंपर इतना बढ़ गया कि उन्होंने भी बालकोंको घरपर रखकर शिक्षा दिलाना ही श्रेष्ठ समझा। इतना ही नहीं किन्तु यदि कोई बच्चोंको उनके घरपर जाकर ही पढ़ा आया करे तो माबाप अपने

बच्चोंको पाठशालाओं और विद्यालयोंमें भेजना भी बंद कर देवें। सब कुछ ठीक ही है परन्तु इस लाड़ प्यारका और झूठ स्नेहका जो खोटा परिणाम और बुरा फल हुवा है और होगा उससे होनेवाली असंख्य हानियाँ इस देशमें अचल और अमिट होकर फैल गई हैं। शहरोंमें अपने२ घरोंमें रखकर दुनियाँके मज़े लूटते हुवे भी बच्चोंको विद्या पढ़ाकर विद्वान्, बलवान् और बुद्धिमान् बना देना ही इस समयके विद्यालयों और पाठशालाओंने अपना उद्देश ठहराया है। इस उद्देशको पूरा करनेमें देशको जो हानि हुई है उसमेंसे कुछ अंश यहाँपर दिखाना उचित जान पड़ता है।

इन संस्थाओंमें पढ़नेके लिये ग्राम और शहरके अच्छे बुरे सब तरहके लड़के जाया करते हैं। गाँव अथवा नगरमें रहनेवाले बच्चे अकसर खोटे चाल चलन, और बदमाश-दुराचारी होते हैं। उन बुरे लड़कोंके साथ पढ़नेसे अच्छे और भलेमानुस बच्चे भी दुराचारी और शौदे बन जाते हैं। बस्तीके रहनेवाले बच्चोंके दुराचारी होनेका दूसरा हेतु यह है कि संगतका प्रभाव बहुत जल्द पड़ता है। बालक अपने साथियोंको जो काम करते देखेगा वही काम आप भी करने लगेगा, यह एक स्वाभाविक नियम है। जो बालक शहरमें रहता है वह शहरवालोंको गाली देते हुवे, लड़ते भिड़ते, जूठ बोलते, जुवा खेलते, बदमाशी करते और पाप करते हुवे देखता है इसलिये वह भी कुछ समयमें बदज़बान, लड़ाकू, झूठा, जुवारी, बदमाश हो जाता है। पुरुषोंको स्त्रियोंकी बुरी कथाएँ कहते हुवे सुनते सुनते बच्चे भी व्यभिचारी और जार बन जाते हैं। केवल मातापिताकी संगतसे बच्चा बचपनमें ही वे वे काम कर लेता है जो कि जवानीमें शरीर पुष्ट हो जानेपर करने चाहिये थे। इसी कारण निर्बल, रोगी, पापी और दुराचारी बनकर दोनों दुनियाँमें दुःख पाया करता है। नगरके बच्चे रात दिन स्त्री

पुरुषोंकी संगतिमें रहा करते हैं, जिनकामोंको स्त्री पुरुष किया करते हैं देखा देखी उन्हींको आप भी करने लगते हैं। अपने अधूरे शरीरमें उन कामोंके करनेकी शक्ति न होते हुवे भी स्त्री पुरुषोंके करने योग्य कामोंको करनेसे वे वेचारे अपना सर्व नाश कर बैठते हैं। किसीको नौकरी करते हुवे, किसीको दूकान लगाते हुवे, किसीको मज़दूरी करते हुवे देखकर बच्चे भी इन कामोंको करना चाहते हैं। कुछ दिनोंमें पाठशाला जाना छोड़ देते हैं और नौकरी या दुकान करना चाहते हैं। यदि घरवाले पढ़नेके लिये तंग करें तो वह दिमागकी कमज़ोरी इत्यादिका वहाना करके उनको भी मदर्सा छोड़नेपर राज़ी कर लेते हैं। ऐसे विगड़े हुवे बच्चोंको एक शौक पुराना पड़नेपर कोई दूसरा नया शौक लगता है और वह पहिले जैसे ही पुराने कामको छोड़कर अपने नये शौकको पूरा करना चाहता है परन्तु अनपढ़ और मूर्ख रह जानेके कारण उसका कोई काम भी सफल नहीं होता। अंतमें दुःख उठाकर अपनी नादानीपर उसे आप पस्ताना पड़ता है। उस समय वृथा कामोंमें समय खो देनेपर वह वहुत पछताता है, विद्या नहीं पढ़नेके कारण हर समय घोर शोक प्रकट करता रहता है और अपने आपको और अपने मातापिताको उलाहना दिया करता है। परन्तु "अब पछताए होत क्हा जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत" ऐसे विगड़ेल बच्चे अपने ही जीवनका सर्व नाश नहीं करते हैं, परन्तु अपनी खोटी संगति और बुरी सम्मतिसे सदाचारी और भलेमानुस लड़कोंको थोड़े ही समयमें घोर पापी, दुराचारी, और अत्याचारी बना कर उनके सब जीवनको भी दुःखमयी बना देते हैं। भाइयो, देखा बच्चोंको वस्तीमें और घर-पर रखकर विद्या पढ़ानेका परिणाम। भाइयो, ये विद्यालय और ये पाठशालाएँ बच्चोंको सुधारकर बलवान्, धर्मात्मा और सदाचारी बना-नेके बजाय नाना प्रकारके दुःखों और आपदाओंका पाठ पढ़ाकर उन्हें भयानक दुःख समुद्रमें ढकेल देनेवाली हैं। शिक्षासे भी संगति बलवान्

है। रातदिनकी कुसंगतिके सन्मुख दो-चार घंटेकी नाममात्रकी शिक्षा क्या फलदायक और कार्यकारी हो सक्ती है?

अध्यापकोंका हाल सुनिये! अध्यापकों और उस्तादोंका यह हाल है कि कोई सौ रुपये और कोई दोसौ रुपये मासिक तनख़ाह ले रहे हैं। जिनके दिमाग़ बादशाहोंसे भी बढ़े हुवे हैं। इनके बैठनेके लिये बादशाहोंके जैसा कमरा उसमें बादशाही सामान भी होना चाहिये। इतनेपर भी ये लोग यदि अपना कर्तव्य पालन करते तो देशकी कुछ उन्नति अवश्य हो सक्ती थी, परन्तु भला कहीं जेन्टलमैन मिहनत कर सक्ते हैं? एक सालकी पढ़ाई चार सालमें पूरी कराते हैं। यदि कोई विद्यार्थी कुछ बात दुबारा पूछे तो उसको अक्सर यही उत्तर मिलता है कि क्या हमारा दिमाग़ मुफतका है? बस, जो बताना था एक बार बता दिया। इन लोगोंका तो यह कर्तव्य है कि इस मिहनत और उस्तादीसे पढ़ावें कि चार सालकी पढ़ाई बच्चोंको एक ही सालमें पढ़ा देवें तब ही ये लोग देशभक्त कहला सक्ते हैं और देशकी उन्नतिमें सहायक हो सक्ते हैं। बहुतसे उस्ताद दुराचारी, अन्यायी और पक्षपाती भी होते हैं। भाइयो! इन ही पाठशाला और विद्यालयोंमें पढ़ाकर क्या आप अपने प्यारे बच्चोंको विद्वान् और बलवान् बनानेकी आशा करते हैं?

इस समय पढ़ लिखकर विद्वान् बननेवालोंसे तो एक किसान अधिक बलवान् निरोगी और उद्योगी होता है। इसका कारण यही है कि किसान अपना अधिक समय खेतोंमें इकल्ला रहकर विताया करता है। अपनेको कुसंगतिसे बचाता है। जंगलकी स्वच्छ वायुसेवन करते रहनेसे अपने शरीरको तंदुरुस्त, बलवान् और अपने जीवनको दीर्घ बनाता है। जेष्ठ-वैसाखकी कड़ी धूपमें सब दिन हल चलाता है तो भी थकनेका नाम नहीं जानता है। यदि कोई कहै कि किसानोंको भोजन करनेको उत्तमोत्तम पुष्टिकारक पदार्थ मिला करते हैं तो हम शर्त बाँधकर कह सक्ते हैं

कि बेचारे निर्धन किसानोंको दलिया, ज्वार, मक्काकी रूखी रोटी, छाछ, रावड़ी और पत्तोंकी भाजीके सिवाय मेवा, मलाई, दूध, घी इत्यादि और कुछ नहीं मिलता है, पहरनेको फटेपुराने वस्त्र, रहनेको टूटा हुवा झोंपड़ा मिलता है तो भी किसान लोग इतने हृष्ट पुष्ट नीरोगी और बलवान् होते हैं। इसका कारण यही है कि पुष्टिकारक भोजन ही नीरोगता और बलका बढ़ानेवाला नहीं है किन्तु स्वच्छ वायु, स्वच्छ जल, सेवन करना, कुसंगतिसे बचना और मिहनत करना, इन सबसे भी नीरोगता और बलकी रक्षा और वृद्धि होती है। विद्यार्थियोंको पुष्टिकारी पदार्थ—दूध, घी, गेहूंकी रोटी, उत्तम तरकारियाँ भोजन करनेको प्रतिदिन मिलती हैं, परन्तु स्वच्छ जल वायु, कुसंगतिसे बचाव, शारीरिक परिश्रम, नीरोगता और बलकी रक्षा और वृद्धिके ये सब साधन नगरमें या ग्राममें रहकर नहीं प्राप्त होते हैं। किन्तु उन्हें वहाँपर रहकर तो रोगकारी और बलनाशक अशुद्ध जल, वायु, कुसंगति, एशो आरामहीका उपयोग करनेपर उतारू होना पड़ता है। इस कारण पुष्टिकारक भोजन जितनी शक्ति देता है उससे चौगुनी शक्ति हानिकारक और बलनाशक उपायोंका सेवन करते रहनेसे नष्ट होती रहती है। यही कारण है कि नगर और ग्रामोंमें रहनेवाले विद्यार्थी उत्तमोत्तम, पुष्टिकारक और बलवर्धक भोजन करनेपर और सब सुख सामग्री मिलनेपर भी निर्बल और रोगी रहा करते हैं। और निर्बल और रोगी मनुष्य न तो विद्या पढ़ सकता है, न उत्तमतापूर्वक और ही कोई काम कर सकता है, भला फिर ऐसे निर्बल और रोगी विद्यार्थी इस देशकी क्या उन्नति कर सकते हैं? उन्हें तो अपनेको पानी पिलानेके लिये भी नौकर रखना पड़ते हैं तब और वे क्या कर सकेंगे? इस समयके नाममात्रके विद्वान् बननेवालो! देखो, आपकी आँखोंकी रोशनी घट गई है, कुछ लिखने या पढ़नेपर आपकी आँखोंसे आँसू गिरने लगते हैं, आपका सिर दुखने लगता है, थोड़ा परिश्रम करनेपर भी आपको

बहुत थकावट मालूम होती है। एक मील भी पैदल चलनेसे आप घबराते हो, कुछ काम धंधा करनेको जी नहीं चाहता है, आपका शरीर दुर्बल हो गया है, आप थोड़ी देर भी धूपमें रहकर काम नहीं कर सक्ते हो, सर्दी-गर्मीको बिल्कुल सहन नहीं कर सक्ते हो, उठकर पानी पीनेकी भी आपमें शक्ति नहीं है। बताइये आपकी उन्नति हुई या हानि हुई? न तो आप अपनी ही उन्नति कर सक्ते हो और न देशकी कुछ भलाई कर सक्ते हो। यह सब कुछ फल नगरों, ग्रामों और घरोंमें रहते हुवे शिक्षा पानेका है। हे भाइयो! इस प्रथासे अपना और अपने देशका सर्व नाश कर बैठे हो तो भी आप विद्या पढ़ने और विद्या पढ़ानेकी इस सर्वनाशक प्रथाको नहीं बंद करते हो! इस समयके विद्यालयों और पाठशालाओंमें पढ़नेवाले विद्यार्थी निर्बल थोड़ासा परिश्रम करनेपर थक जानेवाले निरुत्साही हिम्मतहार और डरपोक होते हैं। यह जानते हुवे भी कि अमुक काम करनेसे ही उन्नति हो सक्ती है तो भी निर्बल और साहसहीन होनेके कारण वे उस कामको नहीं कर सक्ते हैं और तो क्या उनसे अपनी ही उन्नति नहीं हो सक्ती है तो वे जातिसेवा और देशसेवा तो क्या करेंगे? पुष्टिकारक और शक्तिवर्धक भोजन और एशो आराम देने-वाली सामग्री नहीं मिलनेपर भी कुसंगतिसे बचनेवाला अपने बलकी रक्षा करनेवाला सूखे रोटियोंके टुकड़े खाकर पृथ्वीपर घास बिछाकर पेड़की छायामें सोरहनेवाला और जंगलमें रहकर निर्लोभी महात्माओंके पास विद्या पढ़ाता हुवा विद्यार्थी भी बलवान्-साहसी-पराक्रमी हिम्मतबहादुर और विद्वान् बन सक्ता है। प्राचीन इतिहासोंसे यही बात सिद्ध होती है। अतः अपनी संतानकी और अपने देशकी उन्नति चाहनेवालोंको भी सच्ची उन्नति प्राप्त करनेके लिये इन पाठशालाओं और विद्यालयोंको और गुरुकुल और ब्रह्मचर्य-आश्रमोंके रूपमें ही बदल देना चाहिये वरना उन्नति करते हुवे भी अवनति और हानि ही होगी।

हे जातिहितैषियो और देशहितैषियो ! आप चाहते हो कि देश और जातिकी उन्नति होवे परन्तु यत्न ऐसे करते हो कि जिनसे देश और जातिकी दशा अदिक बुरी हो जाती है। आप चाहते हो कि आपके बच्चे ब्रह्मचारी रहकर अपने बलकी रक्षा करते हुवे उत्तम उत्तम विद्याए पढ़ें और शिक्षा पावें परन्तु उनको मूर्खों, दुराचारियों, और व्यभिचारियोंकी संगतिमें रखते हो। आप चाहते हो कि आपके बच्चे साहसी पराक्रमी उद्योगी और बहादुर बनें परन्तु उन्हें साहसहीन और आलसी मनुष्योंमें डरपोक स्त्रियोंके साथमें रखते हो। आप चाहते हो कि आपके बच्चे बुढ़ापेमें आपकी सेवा करें, देशभक्त और जातिसेवक बनें परन्तु उन्हें ऐसे मनुष्यों और बालकोंकी संगतिमें रखते हो जो कि मातापिताओंका निरादर और तिरस्कार करते हैं, देशद्रोही लोभी और मतलबी हैं। आप चाहते हो कि आपके बच्चे चिंतारहित और बेफिक्र होकर विद्या पढ़नेमें मन लगावें और ध्यान देवें। परन्तु शहरोंमें रहते हुवे वे मनुष्योंको कई तरहके काम धंदोंमें लगे हुवे और द्रव्य उपार्जन करते देखकर लोभमें फँस जाते हैं और कोई कारोबार या नौकरीकी चिन्तामें पड़कर कई बहाने बनाते हुवे विद्या पढ़ना बिलकुल ही छोड़ देते हैं।

भाइयो ! संगतिका प्रभाव बच्चोंपर इतना शीघ्र पड़ता है जितना शिक्षाका भी नहीं पड़ता। शिक्षासे संगति बलवान् है। खोटी संगतिमें फँसकर विद्वान् भी दुराचारी और अन्यायी बनकर अपनी विद्याको, अपने कुलको, अपने देश और जातिको भी कलंकित कर लेता है। और सत्संगतिके प्रभावसे एक मूर्ख भी अपने कुल अपनी जाति और अपने देशका यश और कीर्ति दुनियाँमें फैला सक्ता है और आप भी उन्नतिके शिखरपर पहुँच सक्ता है। जब आप अपनी संतानोंको सब चिंताओंसे बचाकर बेफिक्रिसे विद्या पढ़ाना और शिक्षा दिलाना चाहते हो तो उनको विद्वान् सदाचारी और धर्मात्मा पुरुषोंके पास उन गुरुकुलोंमें

रखिये जहाँ किसी तरहकी चिन्ताएँ—बुराइयाँ—कुसंगति और दुनियाँदा-रोंके विषयभोग दिखाई नहीं देते हैं। यदि स्नेह और प्यारके कारण अपने बच्चोंको किसी दूरके गुरुकुलमें न भेज सकें तो अपने ग्राम या नगरसे कुछ दूरपर जंगलमें ऐसे गुरुकुल बनवानेकी कोशिश करें। यत्न करनेपर कोई काम मुशकिल नहीं है। थोड़ीसी कोशिशमें सहज ही गुरुकुल बन सक्ता है जिसके चलानेकी विधि पहिले ही बता चुके हैं। सज्जनो! पुराने समयमें इतने अधिक गुरुकुल नहीं थे जितने कि इस देशमें इस समय विद्यालय और पाठशालाएँ हैं। तो भी प्राचीन उन्नतिका मुकाबिला अबकी नाममात्रकी उन्नति कभी नहीं कर सक्ती। और करना भी नहीं चाहिये क्योंकि बहुत अधिक धन खर्च करनेपर भी और बहुत श्रम करनेपर भी एक दो टूटी फूटी भाषाएँ और पशु पक्षियोंके वृतान्त जानकर ही हमारी शिक्षाका अंत हो जाता है। भाइयो! इन सब विचारोंको पढ़कर आप मुझे मूर्ख, महामूर्ख, देशद्रोही और सत्यानाशी ही ठहराये बिना नहीं रहेंगे। परन्तु यदि आप अपने चित्तको स्थिर करके एकान्त स्थानमें बैठकर इन बातोंपर विचार करोगे तब आप जान सकोगे कि मेरे ये सब विचार कहाँ तक सत्य हैं। अगर कहो कि इन पाठशालाओं और विद्यालयोंको सुधार लेना चाहिये तो अव्वल तो इनका सुधरना ही अस-म्भव है, दूसरे जो मनुष्य इनको ही उन्नतिका श्रेष्ठ उपाय समझ रहे हैं और गुणोंका घर मान रहे हैं, और जो इन्हें हानिकारक नहीं किन्तु लाभ-दायक ही समझे हुवे हैं वे लोग भला इनको क्यों दुरुस्त करने लगे। जो मूर्ख मनुष्य कि अपनेको सबसे बुद्धिमान समझ रहा है वह भला बुद्धिमान् बननेकी क्यों कोशिश करने लगा। बात यह है जो होना है वही होकर रहेगा इसलिये जो कुछ है उसीको लाभदायक जानकर हमें इन पाठशालाओं और विद्यालयोंकी ही सहायता करनी चाहिये। क्योंकि ये संस्थाएँ भी विद्याका प्रचार कर रही हैं। और ऐसे बच्चोंको जो गुरुकुलोंमें जाकर नहीं पढ़ सक्ते, लौकिक और पारलौकिक विद्याएँ

सिखाती हैं। शिल्प वाणिज्य मुनीमी क्लर्की शिश्प आदिकी शिक्षा भी देती हैं। इनके नेता भी परोपकारी, देशभक्त, विद्वान्, बुद्धिमान्, अनुभवी और इंसाफ़-पसंद होने चाहिये। लौकिक विद्याएँ और भाषाएँ सिखानेवाली कई पाठशालाएँ और विद्यालय हैं। धार्मिक विद्याएँ सिखानेवाली केवल दो चार संस्थाएँ हैं जिनमें पढ़नेवाले विद्यार्थी भी न जाने आत्मभक्त निकलेंगे या देशभक्त। परन्तु यह मानव समाज तो अपनी उन्नतिके लिये उनहीपर आशा बाँधे हुवे है।

—औषधालय शफ़ाखाने और मेडीकल हॉल—

ये संस्थाएँ दो प्रकारकी होती हैं। एक तो वे जो राजाओं अथवा गवर्नमेन्टकी तरफसे चल रही हैं और दूसरी वे जो प्रजाकी तरफसे जारी हो रही हैं। दोनों तरफके औषधालय दुःखित रोगियोंको विना मूल्य दवाएँ देकर उनका बड़ा भारी कष्ट निवारण कर रहे हैं और उन्हें नीरोगी बनाकर उन रोगियोंका महान् उपकार करते हैं। मनुष्य बीमार हो जावे तो उसके सब सुख दुःखरूप हो जाते हैं, सब कामकाज बंद हो जाते हैं, किसी समय तो रोगी मनुष्य भयानक रोगकी वेदना सहन करनेमें असमर्थ होनेपर अधिक जीनेकी इच्छा न करके मर जाना ही श्रेष्ठ समझता है। रोगपीड़ित मनुष्य इसी स्थानपर नरकोंके दुःखोंका अनुभव करने लगता है। किसीको ऐसी कठिन पीड़ासे छुड़ाना, किसीका ऐसा घोर दुःख दूर करना क्या सर्वोत्तम धर्म नहीं है? शास्त्रोंमें भी औषधदानका महान् पुण्य बताया है। औषधदान करके पुण्य उपार्जन करते रहना चाहिये, क्योंकि पुण्य ही परलोकमें जीवके साथ जाता है और उसको सुख देता है। परन्तु इस समय प्रत्येक मनुष्यको तो डाक्टरी और वैद्यक आती ही नहीं ताकि अपने घरपर औषधालय बनाकर रोगियोंको लाभ पहुँचा सके, और न सब लोगोंकी आर्थिक दशा ही अपने अपने औषधालयोंको जुदा जुदा चला सकनेकी है। इसके सिवाय जन साधारण प्रतिदिन दो घंटे औषधालयमें

बैठकर रोगियोंकी चिकित्सा करनेमें भी नहीं बिता सक्ते हैं। बस सबसे अच्छा यही उपाय है कि अपनी हैसियतके अनुसार दवाइयां तैयार करवाकर रोगियोंको बाँटनेके लिये किसी औषधालयमें भिजवा देवें—अथवा शक्तिके अनुसार धन देकर औषधालयोंकी सहायता करते रहैं। औषधालयोंके चलानेवाले वैद्य डाक्टर और कंपौन्डर निर्लोभी, परोपकारी और दयालु होने चाहिये।

—साहित्यप्रचारिणी संस्थाएँ—

ऐसी संस्थाएँ सांसारिक और पारलौकिक उन्नतिके वास्ते उत्तम उत्तम पुस्तकें प्रकाशित करती हैं, परन्तु जो पुस्तक प्रकाशित की जावें वह लाभदायक, सबकी समझमें आनेवाली और सरल भाषामें लिखी हुई होनी चाहिये। पुस्तक इसलिये बनाई जाती है कि सर्व साधारण उसको पढ़ सकें और पढ़कर उसे समझ भी सकें, अथवा अपने उद्देश और विचार दूसरोंको प्रगट करनेके लिये ही पुस्तकोंकी रचना की जाती है न कि पण्डिताई दिखलानेको। पुस्तककी भाषा कठिन और क्लिष्ट होनेसे मामूली पढ़े लिखे लोग तो उसे पढ़कर उससे फायदा उठा ही नहीं सक्ते, किन्तु पण्डितजन भी उससे लाभ नहीं उठा सक्ते हैं। क्योंकि पण्डितोंको ऐसे विषय स्वयं याद होते हैं और न उनको ऐसी पुस्तकें पढ़नेको समय ही मिलता है। इसलिये जो कोई कठिन और क्लिष्ट भाषाकी पुस्तकें बनाकर अपनी पण्डिताई दिखाना चाहता है वह वृथा परिश्रम करता है। और अपने अमूल्य समयको वृथा गँवाता है। पुस्तक छपवाते समय उसे स्पष्ट टाइपमें सुन्दरतापूर्वक छपवाना चाहिये। पुस्तकको स्वच्छ और सुन्दर न बनानेसे पुस्तकका विषय अच्छा होनेपर भी, टूटे हुवे अक्षरोंवाली, रद्दी कागजपर छपी हुई, भद्दे टाइटिलवाली पुस्तकको पढ़नेके लिये कोई इच्छा नहीं करता है। और पढ़ने भी लगे तो कष्ट होता है। यदि एक दो चित्र देकर पुस्तककी सुन्दरता अधिक

बढ़ा दी जावे तो और भी अच्छा हो। चित्ताकर्षक और सुन्दर पुस्तकें नहीं पढ़ने योग्य होनेपर भी उनको एक वार तो पढ़नेको जी चाहता ही है। अतः पुस्तक रचनेवाले भाइयोंको ऊपर बताई हुई वातोंपर ध्यान रखना चाहिये। उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित होती रहनेसे ही देशकी उन्नति हो सकती है। ऐसी सस्थाओंके नेता विद्वान्, अनुभवी और देश-भक्त होने चाहिये। हिन्दीसाहित्यसंमेलन, नागरीप्रचारिणी सभा काशी इत्यादि ऐसी संस्थाएँ हैं।

—अनाथ-आश्रम या यतीमख़ाने—

ये संस्थाएँ निराश्रित अनाथ वालकों, अपाहजों, विधवाओं और अंधोंका रक्षण पालन पोषण आदि करती हैं। अकाल वीमारी अथवा अन्य कारणोंसे जिन बच्चोंके मातापिता अथवा अन्य कुटुम्वी मर गये हैं अथवा जिन स्त्रियोंके रक्षा करनेवाले पति इत्यादि मर गये हैं उन बच्चों, स्त्रियों और उनके धर्मकी रक्षा करनेको अनाथ-आश्रम और यतीमख़ाने वनाये जाते हैं। यदि ऐसे अनाथों और अपाहजोंकी रक्षा न की जावे तो वे टुकड़े टुकड़ेको तरस तरसकर मर जावें या अपनी ज़ाति अपना देश और अपना धर्म त्यागकर जातिच्युत, देशद्रोही और धर्मके दुश्मन विधर्मी वन जावें। और अन्यधर्मी हो जानेपर जिस देशमें वे पैदा हुवे थे और जिस धर्मके वे रक्षा करनेवाले और धारण करनेवाले थे उसी देश और उसी धर्मके कट्टर शत्रु, बड़े द्रोही और द्वेषी वन जावेंगे। इस ओर ध्यान नहीं देनेसे ऋषियोंकी कई संतानें मुसलमान्, क्रिश्टान, ईसाई, बौद्ध, नास्तिक, वाममार्गी इत्यादि बनकर भारतवर्षको गारत करनेको खड़ी हो गई हैं और होती जाती हैं।

भाइयो! यदि इस देशकी रक्षा और उन्नति करना चाहते हो और अपने धर्मकी रक्षा करना चाहते हो तो अनाथ बच्चों, विधवाओं और अपाहजोंकी रक्षा करो और उन्हें निज धर्मकी शिक्षा देकर धर्मभक्त

संसारमें कुछ नहीं कर सक्ता है। अपनी और दूसरोंकी उन्नति करनेके लिये बलकी बहुत जरूरत है। इसलिये सबको यत्नपूर्वक अपने बलकी रक्षा और वृद्धि करनी चाहिये। श्रम अर्थात् मिहनत नहीं करनेसे शरीर सुस्त, ढीला, निकम्मा और रोगी हो जाता है। ये संस्थाएँ नाना प्रकारकी व्यायाम और कसरत करना सिखाती हैं। भारतवासियोंने इन संस्थाओंको निकम्मी और बेफ़ायदा जानकर इनसे लाभ उठाना छोड़ दिया है। इसीसे बहादुर, पहलवान, योद्धा और वीर शस्त्रधारियोंकी सन्तानें अब निर्बल, डरपोक, आलसी और निरुत्साही हो गई हैं। ये संस्थाए विद्यार्थियों, बालकों और सिपाहियोंको लाभदायक हैं। भारतवासियोंको इन संस्थाओंकी-कद्र करनी चाहिये।

—सभा सोसाइटी या मिटिङ्ग—

सभ्य पुरुषोंके झुण्डको सभा कहते हैं अथवा जो संस्था सभ्यता (Civilization)का प्रचार करती है उसीको सभा कहते हैं। सभामें बैठनेवाले सभासद् सभ्य या सदस्य कहलाते हैं अथवा जो लोग सभ्यता अर्थात् भलमनसीका पाठ सीखनेके लिये सभामें आते हैं उनको सभासद् कहते हैं। सभामें आकर बैठनेसे सभ्यता, चातुरी, ऐक्यता, मिलनसारी, विनय, एक दूसरेका आदर सत्कार करना, स्वदेशभक्ति, आत्मसुधार, जातिसेवा; विद्यासे प्रीति, धर्मोन्नति, न्यायपर रहना, बुराइयों और कुरीतियोंको त्यागना, उत्तम गुणोंको सीखना, परोपकार करना, उत्तम संगति इत्यादि अमूल्य गुण सहजहीमें आजाते हैं। परन्तु सभामें नहीं जाने और स्वतंत्र रहनेसे मूर्खता और अज्ञानताका बढ़ जाना, कुरीतियोंमें फँस जाना, नाना प्रकारके खोटे विचारों और पापोंमें फँस जाना, मनुष्योंका यथोचित आदर सत्कार आवभक्ति नहीं कर सकना, असभ्यतापूर्वक बातचीत करना, विना बात अकड़ना और घमण्ड करना, क्रोधी लोभी झूंठा जुवारी हिंसक और चौर बन जाना, व्यभिचारी अन्यायी और देशद्रोही बनजाना इत्यादि

महा खोटे नरकोंमें लेजानेवाले और मनुष्यजीवनको सत्यानाश करके दुःखमई बनानेवाले दुर्गुण सहजहीमें आजाते हैं। यदि पैदा होते ही मनुष्योंको एक कोठड़ीमें वंद कर दिया जावे या निर्जन वनमें छोड़ दिया जावे तो वड़ा हो जानेपर भी उसमें उत्तम बोली, बैठने उठने और बात करनेकी चतुराई, धर्मज्ञान इत्यादि कभी नहीं आ सक्ते हैं किन्तु वह गूँगापन या पशुओंकी बोली, अज्ञानता और मूर्खता ही सीखेगा। भाइयो! मनुष्य पेटमेंसे कुछ भी सीखकर नहीं आता है, परन्तु अपने साथियोंको जो कुछ भले या बुरे काम करते देखता है वही काम उनसे सीखकर उनकी देखा-देखी वैसे ही काम स्वयं भी करने लगता है। उसके साथी जैसी बोली बोलते हों वैसी ही वह भी बोलना सीख लेता है, जैसा भोजन और जैसे वस्त्र उसके साथी खाते पहनते हैं उनके देखादेखी वह भी वैसे ही भोजन और वस्त्र खाने पहरने लगता है। यदि मनुष्यके साथी दुराचारी, चोर, और अन्याई हैं तो वह भी उनको देखकर चोर, अन्याई और दुराचारी ही बन जाता है। यदि साथी धर्मात्मा, परोपकारी, न्यायी होंगे तो वह भी अपने साथियोंका अनुकरण करके धर्मात्मा, परोपकारी और इंसाफ़-पसंद ही बनेगा। शास्त्रोंमें संगतिका यही फल लिखा है कि जैसी संगति होगी वैसे ही गुण आवेंगे। कहा भी है—"संगत ही गुण ऊपजे, संगत ही गुण जाय।" अथवा "जैसा होवे संग वैसा ही बने ढंग"। यदि कोई अपने बच्चेको धर्मात्मा बनाना चाहै तो उसे धर्मात्मा पुरुषोंमें रख देवे। यदि उसे अंग्रेज़ी सिखाना चाहै तो उसे अंग्रेज़ीमें रख देवे, चोर बनाना चाहै तो चोरोंमें और गुणवान बनाना चाहै तो गुणियोंके साथमें रख देवे। जो मनुष्य भला मानुष और धर्मात्मा बनना चाहता है उसे अवश्य ही सभ्य, भले मानुष और धर्मात्मा पुरुषोंकी संगति करनेके लिये उन मनुष्योंकी सभाओं और सोसाइटियोंमें जाना चाहिये, जो सदाचारी भले मानुष और धर्मात्मा हैं। हमारे विचारसे जो मनुष्य—सभाओंमें जाकर

नहीं बैठते, और जो सभाओंकी निन्दा करते रहते हैं वे विना सींग और पूँछके पशु हैं। कुरीतियों और खोटे रिवाजोंको समाजमेंसे दूर करने और सुरीतियाँ और लाभदायक रिवाज प्रचलित करनेका उत्तम काम सभाओंके सिवाय और कौन कर सक्ता है? अधर्मको रोककर धर्मका प्रचार करना भी सभाओंके विना नहीं हो सक्ता है। जो कुछ उन्नति हो सक्ती है वह सभा सोसाइटियों और मीटिङ्गसके द्वारा ही हो सक्ती है, वरना एक मनुष्य कुछ भी नहीं कर सक्ता है। भाइयों! यदि आपको सभ्य, भलामानुष, सदाचारी, देशभक्त, धर्मात्मा बनकर अपनी और अपने भाइयोंकी उन्नति करना है और ऐक्यता ईमानदारी न्यायका पाठ पढ़ना है तो आप सब झूठे झगड़ोंको छोड़कर सभ्य, भलेमानुष, सदाचारी, देशभक्त, धर्मात्मा, न्यायमूर्ति और ईमानदार मनुष्योंकी मण्डलियों और सभाओंमें जाइये और कुछ दिन तक उनका साथ करके उनसे उन उत्तम गुणोंको सीखिये जिनको कि आप उत्तम और लाभदायक समझते हों, परन्तु याद रखिये उनके उपदेशके अनुसार काम करने और उनकी आज्ञा मानने और सेवा करनेसे ही आपकी मनःकामना पूरी हो सकेगी, अन्यथा करनेपर कुछ लाभ न होगा। उत्तम सभा ही उन्नतिकी जीती जागती मूर्ति है। सभाएँ-(१)राजसभा, (२) न्यायसभा, (३) धर्मसभा, (४) सामाजिक अथवा साधारण सभा इस प्रकार चार तरहकी होती हैं—

(१) राजसभा (The King's Court) मनुष्योंकी वह मण्डली है जिसमें राजा और उसके कर्मचारीगण बैठकर राज्यका प्रबंध करते हैं। दरीखाना, बैठक इत्यादि इसीके नाम हैं।

(२) न्यायसभा या कौंसिल (Court of Justice on Council) वह सभा है जहाँ न्याय किया जाता है और किसी बातपर लड़नेवाले मनुष्यों या पक्षोंके उचित और योग्य अधिकारोंकी रक्षा की जाती है और उन्हें उचित मार्गपर लगाकर अन्याय करनेवाले और दूसरोंके

अधिकार छीन लेनेवाले मनुष्य या पक्षको दण्ड दिया जाता है ताकि वह आगेको अन्याय न करे।

ऐसी सभाओंके होनेसे वलवान् निर्वलोंपर, धनिक निर्धनोंपर, जवान बच्चोंपर और पुरुष स्त्रियोंपर अत्याचार और अन्याय नहीं करने पाते हैं। संसारमें सुख शान्ति और अमनचैन रहता है। ये सभाएँ राजाकी ओर-से भी नियत की जाती हैं और कचहरियें या महकमें या ऑफिस कहलाती हैं। और प्रजाकी तरफसे भी अपनी अपनी जातिमें शान्ति रखने और कुरीतियोंको रोककर सूरीतियोंका प्रचार करके जातिकी उन्नति करती रहनेके लिये वनाई जाती है जिन्हें पंचायत अथवा पंचायती बैठक कहते हैं। परन्तु इस समय पंचायतीका ढंग वहुत विगड़ गया हैं, न्यायके स्थान-पर अन्याय करना और उचितके स्थानपर अनुचित फैसला करना विरादरी या पंचायतीका कार्य रह गया है। कर्तव्यको अकर्तव्य और अकर्तव्यको कर्तव्य, धर्मको अधर्म, और अधर्मको धर्म समझकर प्रत्येक काम करना अब पंचायतियोंने अपना धर्म समझ लिया है। जातिमें बाल वृद्ध विवाहोंका जारी होना, वेटा वेटी वेचना, रंण्डी भडुओंको माल लुटाना, अधर्मसे धन कमाना और उसे ब्याहशादी, नुक्तों, कनागतों, आतिशबाज़ी इत्यादिमें लुटा देना, संतानोंको मूर्ख रखना, बच्चोंको विद्यारूपी अविनाशी और अनोखे गहिने न पहिनाकर चाँदी सोनेके गहिने और जेवर पहिनाना और उन्हें दुर्वल रोगी वनाना और चोरोंसे उनकी जानें लिवाना, पुरुषोंको तो सव कुछ पढ़ने देना परन्तु स्त्रियोंको पढ़ने न देना और गृहप्रबंधकी शिक्षा तक भी न देना इत्यादि अन्यायों और कुरीति-योंको पंचायतों और विरादरियोंने मूर्खता और अज्ञानताके कारण न्याय, सुरीतियाँ और जातिकी उन्नतिके मुख्य उपाय समझ रखा है। भाइयो, देखिये जिन पंचायतोंको जातिमें फैली हुई कुरीतियाँ हटाकर उत्तम गुण, सदाचार और सुरीतियाँ अपनी जातिमें फैलाकर अपनी जातिकी उन्नति

करना चाहिये था। यदि कोई उसको कुरीतियोंका स्वरूप दिखलाकर उनसे कुरीतियाँ रोकनेको और सुरीतियाँ प्रचार करनेको कहता है तो उसीको वे पंचायतें अपना शत्रु, जातिद्रोही और धर्मभ्रष्ट कह सदाके लिये खारिज-कर देती हैं। इसी कारण कोई मनुष्य इन अत्याचारिणी पंचायतोंको सुधा-रनेका साहस नहीं करता है। बड़े बड़े विद्वान् भी कानमें तेल डालकर चुपचाप हो रहे हैं। हे भाइयो! इन बिरादरीके मूर्खमुखियाओं और पटेल चौधरियोंने तुम्हारी जातिकी क्या दीन हीन दशा कर दी है कि जिसको लिखते हुवे लेखनी काँपती है, कलेजा फटता है और आँखोंसे आसू टपकते हैं। दूल्हा मरो या दुलहिन इनको तो लड्डू उड़ानेसे काम है। इनके तो दोनों हाथोंमें और दोनों बातोंमे लड्डू कचौरी सही होते हैं। हे ईश्वर! कैसा उलटा समय है कि मूर्ख पार्टी विद्वानोंपर राज्य कर रही है और विद्वानों और शिक्षितोंको बन्दरकी तरह नचा रही है!!!

ए विद्वानो! शर्म है! शोक है!! तुम मूर्खोंके दासानुदास बने हुवे हो। ज़रा बताओ तो सही, तुम्हारी विद्वत्ता और कई वर्षोंकी प्राप्त की हुई शिक्षा कहाँ जाकर दब गई? चेतो और मूर्खोंको अपना दास बना कर उनपर उचित शासन करो और जाति और समाजकी दशा सुधारो।

(३) धर्मसभाएँ इनका कर्तव्य धर्मका प्रचार करना और अधर्मको रोकना है। अज्ञानियोंको ज्ञानवान् बनाकर धर्मात्मा बनाना, बेईमानोंको ईमानदार बनाना, झूठ, हिंसा, वैरभाव, आपसका द्वेष, चोरी, व्यभिचार, अन्याय इत्यादि बुराइयों और पापोंको छुड़ाकर सत्य, दया, क्षमा, एकता, न्यायपूर्वक धन कमाना, अपने बलकी रक्षा करना, सबके अधिकारोंको जानना और किसीका अधिकार नहीं छीनना इत्यादि श्रेष्ठ गुणोंकी शिक्षा देना है। धार्मिक उन्नति और धर्मप्रचार इन समाजोंके विना नहीं हो सक्ता। परन्तु इस समय तो बहुतसी धर्मसभाएँ फूट, द्वेष, स्वार्थ, इत्यादिका ही प्रचार कर रही हैं।

दिन दिन सभाएँ भी भयङ्कर भेद भाव बढ़ा रहीं,
प्रस्ताव करके ही हमें कर्तव्य पाठ पढ़ा रहीं ॥
पारस्परिक रणरंगसे अवकाश उनको है कहाँ।
'मतभिन्नताका शत्रुता' ही अर्थ कर लीजे यहाँ ॥
उपदेशकोंमें आज कितने लोग ऐसे हैं कहें,
उपदेशके अनुसार जो वे आप भी चलते रहे ॥
कहना तथा करना परस्पर एकसा जिनका नहीं।
उनके कथनका भी भला कुछ मूल्य होता है कहीं ॥
है वेष तक उनका विदेशी और यह उपदेश है ॥
"त्यागो विदेशी वस्तुएँ पहिला यही उद्देश है।"
(भारतभारतीसे)

धर्मकी दशा।

हिन्दू सनातन धर्मके ऐसे पवित्र विधान हैं।
संसारमें सबके लिये जो मान्य एक समान हैं ॥
धृति, शान्ति, शौच, दया, क्षमा, शम, दम, अहिंसा, सत्यता;
पर हाय ! इनमेंसे किसीका आज हममें है पता ? ॥
जो धर्म्म सुखका हेतु है भव सिंधुका जो सेतु है;
देखो उसे हमने बनाया अब कलहका हेतु है !! ॥
परमार्थकी, संसारकी भी सिद्धिका वह धाम है;
पर, वाद और विवादमें ही आज उसका नाम है ॥
बस कागज़ी घुड़दौड़में है आज इतिकर्तव्यता।
भीतर मलिनता हो भले ही किन्तु बाहर भव्यता।
धनवान् ही धार्मिक बनें, यद्यपि अधर्म्मी सक्त हैं;
हैं लाखमें दो-चार सुहृदय, शेष बगुला भक्त हैं !

अनुकूल जो अपने हुवे वे ही यहाँ सद ग्रन्थ हैं ;
जितने पुरुष अब हैं यहाँ उतने समझलो पंथ हैं ।
यों फूट कीचड़ जम गई, अज्ञान आकर अड़ गया;
हो छिन्न भिन्न समाज सारा दीन दुर्बल पड़ गया ॥
आक्षेप करना दूसरोंपर धर्म्मनिष्ठा है यहाँ;
पाखण्डियोंहीकी अधिकतर अब प्रतिष्ठा है यहाँ ॥
हम आड़ लेकर धर्मकी अब लीन हैं विद्रोह में;
मत ही हमारा धर्म है; हम पड़ रहे हैं मोहमें ! ॥
उद्देश है बस एक यद्यपि पथ अनेक प्रमाण हैं—
रुचि भिन्नतार्थ किये गये जो ज्ञानसे निर्माण हैं ।
पर अब पथोंको ही यहाँपर धर्म्म हैं हम मानते !
करके परस्पर घोर निन्दा व्यर्थ ही हठ ठानते ॥
प्रभु एक किन्तु असंख्य उसके नाम और चरित्र हैं;
तुम शैव हम वैष्णव, इसीसे हा अभाग्य ! अमित्र हैं ।
तुम ईशको निर्गुण समझते हम सगुण भी जानते;
हा ! अब इसीसे हम परस्पर शत्रुता हैं मानते ! ॥
है धर्म बस निःस्वार्थता ही, प्रेम जिसका मूल है;
भूले हुवे हैं हम इसे, कैसी हमारी भूल है ? ॥
(भारतभारतीसे)

भाइयो ! देखी धर्मकी दशा ! ! जिस धर्मके द्वारा हम "आत्मवत सर्वभूतेषु परद्रव्येषु लोष्टवत् । मातृवत्सर्वदारेषुं" इत्यादि बन जाते थे। आज उसी पवित्र धर्मकी यह दुर्दशा है कि भाई भाईमें भी नहीं बनती है ! शोक!! महाशोक!!! भाइयो, इन नाममात्रकी सभाओंसे धर्म प्रचार कदापि नहीं होगा। यदि धर्मोन्नति और आत्मोन्नति करना चाहते हो तो इन सभाओंका ठीक ठीक सुधार करो । जैसे विना राजाके प्रजा चैनसे नहीं रह सक्ती,

विना नायकके फ़ौज नियमके अनुसार कार्य नहीं करती वैसे विना सभापतिके सभा भी नहीं चल सक्ती। सभाको नियमानुकूल चलनेके लिये सभापतिकी आवश्यकता है। सभापति अनुभवी, विद्वान्, दूरदर्शी, बुद्धिमान, न्यायी, सत्यवक्ता, पक्षपातरहित और प्रभावशाली होना चाहिये। परन्तु जिस तरह राजाको भी सलाह सूत करनेके लिये उचित और योग्य मन्त्रीकी या दीवानकी ज़रूरत होती है उसी तरह सभापतिको भी सभाके कार्योंमें सम्मति देनेके लिये और सभाका यथोचित प्रबंध करनेके लिये योग्य मन्त्रीकी ज़रूरत होती है। मन्त्री उद्योगी, अनुभवी, विद्वान्, दूरदर्शी और बुद्धिमान् होना चाहिये। सभापति और मन्त्रीकी सहायता करनेको एक सहायक मन्त्री भी बनाना चाहिये। देखो, सभा एक राज्यके सादृश है। जिस तरह राजाको अपने राज्यमें कई तरहके प्रबंध करनेके लिये कई तरहके अफ़सर रखनेकी ज़रूरत पड़ती है इसी तरह सभाके कई कार्योंका प्रबंध भलीभाँति चलानेको सभापतिको भी कई तरहके कार्यकर्ता रखनेकी ज़रूरत होती है। सभाकी आमद अपने पास हिफ़ाजतसे रखनेकी और मन्त्रीकी आज्ञासे-जितना मन्त्री आज्ञा दे उतना ही रुपया मंत्रीके पास या किसी अन्य ओहदेदारके पास खर्चेके लिये भेजनेको एक एक ईमानदार खजान्ची या कोषाध्यक्षकी ज़रूरत पड़ती है। कोषाध्यक्ष धनिक, निर्लोभी और ईमानदार होना चाहिये। सभामें बिछायत, रोशनी, जल आदिका प्रबंध करने और आये हुवोंका आदर सत्कार करनेके लिये दो मैनेजरोंकी ज़रूरत है। मैनेजर भलेमानुष, सदाचारी, विनयी, दयालु और परिश्रमी होने चाहिये। आमद और खर्च इत्यादिका हिसाब लिखने और पत्रव्यवहार करनेको एक क्लर्ककी ज़रूरत है। क्लर्क मिहनती और विद्वान् होना चाहिये। और सभाके हिसाबकी जाँच करनेको और कार्य-कर्ताओंके प्रबंधकी सँभाल रखनेको एक निरीक्षककी ज़रूरत होती है।

निरीक्षक चतुर, विद्वान् और पक्षपातरहित होना चाहिये। यदि प्रजा नहीं हो तो राजा किसपर राज्य करे इसी तरहसे सभाके लिये समासदोंका होना ज़रूरी है।

धर्म बादशाह है जो सब सभाओंपर बादशाहत करार कर रहा है। सभाए राज्य हैं, सभासद प्रजा हैं और सभापति सभाका मालिक और सभासदोंका राजा है। परन्तु बादशाह धर्मका मातहत और सेवक है इसीसे ' धर्म ' की आज्ञा पालन करते हुवे ही सभासदोंपर राज्य करता है। बादशाह " धर्म " की आज्ञा मानना और उसके अनुसार चलना सभाके प्रत्येक कार्यकर्ता और सभासद्का कर्तव्य है। उस आज्ञाको और धर्मके क़ानूनको सभासदों और कार्यकर्ताओंमें फैलानेके लिये उपदेशकोंकी ज़रूरत होती है। प्रत्येक सभामें दो उपदेशक अवश्य होने चाहिये। एक तो सदर सभामें व्याख्यान सुनानेवाला, दूसरा अन्य सब गामोंमें फिर कर उपदेश देनेवाला। लौकिक दृष्टिसे श्रीमान् सम्राट जार्ज पंचम हमारे बादशाह हैं और उनकी आज्ञा मानकर उसके अनुसार चलना हमारा प्रथम कर्तव्य है। परन्तु धार्मिक दृष्टिसे 'धर्म" ही हम सभोंका बादशाह है और उसके क़ानून और उसकी आज्ञाओं 'धर्मशास्त्रों' को मानना और उनके अनुसार चलना मनुष्य मात्रका श्रेष्ठ कर्तव्य है। नहीं तो वह ' धर्म 'का अपराधी है। भाइयो! धर्म ही इस लोक और परलोक दोनों स्थानोंमें सुखदायक है इसलिये धर्मशास्त्रोंके अनुसार चलकर दोनों लोकोंमें सुख पानेका उपाय करिये। परन्तु धर्मका प्रचार और धार्मिक उन्नतिका होना विना सभाओंके असंभव है। इसलिये हे भाइयो! यदि आपको धर्मसें सच्ची लगन और सच्ची प्रीति है तो सभाओंमें जाइये, धर्मके व्याख्यान सुनिये और तदनुसार चलकर यश पुण्य और सच्चा सुख प्राप्त करिये। ये सभाके उपदेशक परोपकारी, विद्वान्, न्यायी, सत्यवक्ता, अनुभवी, निर्लोभी

और देशभक्त होने चाहिये । सभाके मुख्य कार्यकर्ताओंका कुछ बयान हो चुका है । यदि अधिक कार्यकर्ताओंकी ज़रूरत पड़े तो सभापति और मन्त्रीको सर्वसम्मतिके अनुसार नये कार्यकर्ता बना लेनेका अधिकार है ।

अब कार्यकर्ताओंके धर्म और कर्तव्योंको बताया जाता है। जो काम कार्यकर्ताओंके सौंपा गया है. उसको उन्हें दिल लगाकर सावधानीसे करना चाहिये। अपनेको मिले हुवे सभाके कामको नहीं करने या बिगाड़कर करनेसे कार्यकर्ताओंकी बदनामी निन्दा और धर्मप्रचारमें हानि होती है जिससे बड़ा पाप होता है । और अपने कर्तव्यको पूर्णरूपसे सावधानीके साथ पालन करनेपर यश, प्रशंसा और धर्म प्रचारमें सहायता होनेसे महान् पुण्य होता है । कार्यकर्ताओंको आपसमें मेलसे रहना चाहिये । एक दूसरेका आदर सत्कार करना, एक दूसरेसे प्रेम, एक दूसरेकी सहायता करना, अपने अफ़सरकी आज्ञा मानना और सदा सभाको लाभदायक हो ऐसा काम करना चाहिये । यदि कोई कार्य-कर्ता किसी कार्यकर्ताका अपमान, निरादर, या अपराध करे तो प्रथम तो उसे सहन करके क्षमा धारण करना चाहिये । यदि वह अपराध सहन नहीं हो सके तो स्वयं उसका बदला न लेकर किसी अफ़सरसे इसकी रिपोर्ट करनी चाहिये और अफ़सरके किये हुवे न्यायपर दोनोंको संतोष करना चाहिये । अपराधीसे अपराधका स्वयं अपने आप बदला लेनेसे, धर्मकार्यमें विघ्न, अशांति, रुकावट, कलह और द्वेष इत्यादि दोष पैदा हो जाते हैं । कार्यकर्ताओंको सभासदोंसे भी प्रीतिप्रेमका व्यवहार करना चाहिये। यदि वे सभासद् आपसमें लड़ें तो उन्हें नम्रतापूर्वक समझा देना चाहिये । कार्यकर्ताओंको सभासदोंके सुधार और उपकारकी कोशिश करते रहना चाहिये । यदि कोई सभासद् नियम विरुद्ध काम करे तो उसे दण्ड भी देना चाहिये । धर्मरूपी बादशाहकी बड़ी भारी बादशाहत है। सभाएँ उस बादशाहतके छोटे छोटे टुकड़े हैं। जैसे एक बादशाहमें छोटे

छोटे कई राज्य होते हैं और उनमें राजाओंका राज्य होता है। उसी प्रकार सब सभाओंपर धर्मकी बादशाहत है और प्रत्येक सभापति प्रत्येक सभाका राजा है। और अन्य कार्यकर्तागण उस राज्यके अफसर और कर्मचारी हैं और सभाके सभासद् प्रजा हैं। जैसे प्रजाको राजाकी और अफ़सरोंकी आज्ञा मानना और उसके अनुसार ही चलना चाहिये उसी तरह सब सभासदोंको सभापति और दूसरे कार्यकर्ताओंकी आज्ञा मानकर उसके अनुकूल ही चलना चहिये और प्रत्येक कार्यकर्ताका योग्य आदर सत्कार करना चाहिये। सभासदोंको सभासदोंके साथ भी प्रेम, दया, और महरबानीका व्यवहार करना चाहिये। एक सभासद दूसरे सभासद्से तमीज़से बात करे, किसीसे बुरी और कड़वी बात न कहे, किसीसे लड़ाई झगड़ा न करे और सभामें कोलाहल अथवा गड़बड़ न मचावे। यदि कोई अज्ञानवश किसी सभासद्का अपराध करे तो नम्रतासे अपराधीको समझा देवे और उसका अपराध क्षमा कर देवे। परन्तु यदि वह अपराध आपसे न सहाजा सके तो अपने आप उस अपराधका बदला न लेकर किसी कार्यकर्तासे उसकी सूचना करनी चाहिये और उसके किये हुवे न्यायपर प्रसन्न रहना चाहिये। खुद बदला लेनेसे वैर-भाव, शत्रुता, जलन, फूट, अन्य पुरुषोंका अनादर, धर्मकार्यमें बाधा होना इत्यादि बहुतसी बुराइयाँ हैं। उठना-बैठना या कोई और काम तमीज़से, सभ्यता और चतुराईसे और देख भालकर करे। प्रत्येक काम करते समय यह याद रखना चाहिये कि इस कामको करते हुवे किसीका निरादर, नुक़सान, अपराध अथवा हानि न हो जावे। बस सब काम बड़ी सावधानीसे यत्नाचारपूर्वक करने चाहिये ताकि किसीको भी किसी तरहकी हानि न उठाना पड़े। अपनेसे बड़ोंका आदर करो और उनसे नीचे आसनपर बैठो। जो सभासद् अपनेसे बड़े हैं उनकी भी आज्ञा मानना चाहिये। और जो अपनेसे छोटे हैं उनसे प्रीति व प्रेम रक्खो। सदा छोटोंके साथ भलाई करो। उनका अपराध क्षमा करके उन्हें न्याय और नीतिकी शिक्षा दो क्योंकि

बड़े वे ही हैं जो आप तो दुःख सह लेते हैं परन्तु अपने लिये दूसरोंको कभी दुःख न देते है। सभामें शोर-दंगा, वृथा बकबक इत्यादि नियम विरुद्ध काम कभी मत करो, एक पङ्क्ति या लाइनमें भले मानुष बनकर बैठो। जैसे राजाके बनाये हुवे क़ानूनको मानना प्रत्येक मनुष्यका धर्म है उसी तरह सभाके नियमोंके अनुसार प्रत्येक काम करना प्रत्येक सभासद्का कर्तव्य है। यदि इन सभाओंको सुधारा जावे और बड़े बड़े साधु महात्माओंको सभाके खेवटिया या लीडर बनाया जावे और उचित रीतिसे देशमें धर्म प्रचार किया जावे तो धर्मके प्रसादसे शीघ्र ही यथोचित उन्नति हो सक्ती है।

(४) सामाजिक अथवा साधारण सभा (A Public Meeting) वह सभा है जिसमें सब धर्मवाले और सब जातियोंवाले एक स्थानपर एकत्रित होकर अपने देशकी उन्नतिके उपाय सोचते हैं और सब एक होकर आपसी वैर विरोधको मिटाकर निज देशकी दशा सुधारनेका यत्न करते हैं। नेशनल कॉंग्रेस यहाँ ऐसी सभा है।

इन चारों प्रकारकी सभाओंकी सहायता करना और सहायता करवाना प्रत्येक मनुष्यका उत्कृष्ट कर्तव्य ही नहीं किन्तु श्रेष्ठ धर्म भी है। क्योंकि उन्नतिका मुख्य द्वार सभाएँ ही हैं।

—सन्यास आश्रम अथवा योगाश्रम—

आत्मज्ञान और ब्रह्म विद्या सिखानेके लिये इन आश्रमोंकी स्थापना की गई थी। देश सुधार, परोपकार और धर्म प्रचार ही इनका उद्देश था। परन्तु अब तो ये संस्थाएँ भीख माँगकर खाना, आलसी और निरुद्यमी बनकर पड़ा रहना और विषयलोलुपी हो जाना ही सिखाती हैं। प्राचीन समयमें ये संस्थाएँ धर्मकी उन्नतिका केन्द्र समझी जाती थीं। साधु महात्मा सब जगह विहार करके सबको उत्तम उपदेश और शास्त्रोक्त व्याख्यान सुनाया करते थे और

सच्चे मार्गपर लाया करते थे। परन्तु इस समयके साधु बहुधा धर्म-भ्रष्ट और आचारभ्रष्ट हैं। और दूसरोंको अपनी संगति और शिक्षासे खोटे मार्गपर लगाकर भ्रष्ट कर रहे हैं। इन संस्थाओंके नमूने अब भी देख पड़ते हैं। जैसे रामद्वारा जैनियोंका उपाश्रय-स्थानक, गोसाइयों और नांथोंके मठ इत्यादि। इन आश्रमोंका सुधार हो कर सच्चे साधु तैयार करनेकी आवश्यकता है। ऐसे आश्रमोंके नेता आचार्य महन्त विद्वान् आत्मज्ञानी और हितोपदेशक होने चाहिये।

—स्त्रियोंको लाभ पहुँचानेवाली संस्थाएँ—

पुरुषोंके साथ रहकर पुरुषोंकी संस्थाओंमें स्त्रियें शिक्षा नहीं पा सक्ती हैं क्योंकि ऐसा होनेसे स्त्री पुरुष दोनोंकी महान् हानि होती है। दोनों पतित, धर्मभ्रष्ट और अत्याचारी बन जाते हैं। इसी कारण स्त्रियोंकी उन्नति और हितके लिये स्त्रियोंकी भी सब संस्थाएँ, पुरुषोंकी संस्थाओंके समान ही होती थीं। जिनके द्वारा स्त्रियोंका सुधार और स्त्रियोंकी उन्नति की जाती थी। इन संस्थाओंकी संचालिकाएँ योग्य, विद्वान, अनुभवी, बुद्धिमती और सदाचारिणी स्त्रियें होती थीं। ऐसी स्त्रियोंके अभावमें वृद्ध और सदाचारी पुरुष भी स्त्रियोंकी संस्थाओंके नेता होते थे। कन्यागुरुकुल, कन्यापाठशाला, कन्या-अनाथाश्रम, श्राविकाश्रम, वि-धवाश्रम-इत्यादि स्त्रीसभाएँ स्त्रियोंको लाभ पहुँचानेवाली संस्थाएँ हैं और उचित रीतिसे स्त्रियोंकी उन्नति करनेवाली हैं। भाइयो! समाज-उन्नति अथवा जातिउन्नति होनेसे ही देशोन्नति और धर्मोन्नति हो सक्ती है। और समाजके दो भाग हैं (१) पुरुष समाज और (२) स्त्री समाज। इसलिये पुरुष समाज और स्त्री समाज इन दोनों विभागोंकी उन्नति होनेसे ही सब समाज-की उन्नति हो सक्ती है। पुरुषोंकी संस्थाओंको सुधार कर पुरुषोंकी ही उन्नति करनेसे केवल आधे ही समाजका सुधार होता है और आधा स्त्री समाज अशिक्षित रहता है जिसके कारण ही बड़ी बडी हानियाँ उठाना

पड़ती हैं। अतः स्त्रियोंकी संस्थाओंको सुधार कर उनके द्वारा स्त्री समाजकी उन्नति करना ही उचित है। और भी कई लाभदायक और उपयोगी संस्थाएँ होती हैं। इन सब संस्थाओंकी तन मन धनसे सहायता करते रहना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। देशोन्नति और जाति सुधारके लिये आवश्यकतानुसार नई संस्थाएँ भी स्थापित कर लेना चाहिये क्योंकि संस्थाओंके द्वारा ही प्रत्येक देशकी और समाजकी उन्नति हुई है और हो सक्ती है। सच है उन्नतिकी जड़ संस्थाएँ ही हैं। अब कुछ ऐसे कारण बताये जाते हैं जिनके कारण संस्थाएँ नहीं चलती हैं और नष्ट हो जाती हैं।:—

(१) इस देशवाले संस्थाओंके गुण और लाभ नहीं जानते इसीसे नाँच, थियेटर, मुकद्दमेंबाज़ी, सौदे-सट्टोंमें और संडों-मुसंडोको जिमानेमें तो अपना सारा धन खर्च कर देना अच्छा समझते हैं परन्तु संस्थाओंको तनिक भी सहायता नहीं देकर उनको झूँठे दूषण लगाना और उनकी निन्दा करना ही अपना कर्तव्य समझते हैं।

(२) देशभक्त और जातिसेवकोंका अभाव है--क्योंकि इस समय देशभक्ति और जातिसेवाकी शिक्षा देना बंद हो गया है। देशभक्त और जातिसेवकोंको लोग घोर विपत्तिमें फँसाकर ऊपरसे दो लातें मारते हैं। फिर किसको गर्ज़ पड़ी है जो अपना सुख छोड़कर देशसेवा और जातिसेवा करेगा और सबका शत्रु बनकर विपत्ति मोल लेगा? इसका कारण समाजकी अज्ञानता है। सच है जब बालक बेसमझ होता है तो आगको पकड़ने दोड़ता है और यदि उसका कोई शुभचिन्तक उस मूर्खताके और हानिकारक कामसे उसे रोके तो वह बालक उसे अपना शत्रु जानता और लातों घूँसों और गालियोंसे अपने हितैषीका सत्कार करता है।

(३) इस देशके राजाओं और रईसोंको भी अपने देशकी उन्नति और उसके सुधारका कुछ भी ध्यान नहीं है। यहाँके राजा, रईस, सेठ,

साहूकार, बड़े आदमी केवल अपना ही लाभ चाहते हैं और अपने ही आनंदमें मग्न हैं। इसका कारण इनको सत् शिक्षाका न मिलना है। इन आँखके अंधों और गाँठके पूरोंको निज देश और समाजकी दीन हीन दशापर कुछ भी तरस नहीं आता। इन लोगोंने तो अपना जीवन केवल संसारके विषयभोगोंको भोगने और आनंद उड़ानेके लिये ही समझ रक्खा है। शायद इनको यह ध्यान भी नहीं है कि देश और जाति भी कोई चीज़ है! संसारकी विषयवासनाओंमें फँसकर मनुष्य अंधा हो जाता है। जो राजा, रईस और सेठ लोग संस्थाओंकी सहायता करनेके योग्य हैं उनको तो इस बातका ध्यान भी नहीं है। वे संस्थाओंके गुण और लाभ कुछ नहीं समझते और जो लोग संस्थाओंकी सहायता करना अपना धर्म जानते हैं उनके पास कुछ धन नहीं है। इसीलिये उनके विचार दिलके दिलहीमें रह जाते हैं और इसी तरह उन्नतिकी मूल इन संस्थाओंकी सहायता कोई भी नहीं करता है।

(४) समाजमें छः तरहके मनुष्य हुवा करते हैं (१) एक तो वे मनुष्य जो बुरी तरहसे रुपया कमा कमा कर उसे इकट्ठा किया करते हैं। न तो उस रुपयेसे खुद लाभ उठाते हैं और न उसे दान पुण्य आदिक उत्तम कामोंमें खर्च करते हैं। (२) कुछ वे मनुष्य होते हैं जो देशका धन लूट लूट कर अपने ही आनंद और विषयभोगोंमें खर्च करते हैं परन्तु दान, पुण्य, देशसेवा, जातिसेवाके नामपर एक पैसा भी खर्च करते हुवे उन्हें बहुत दुःख होता है और बुखार चढ़ आता है (३) कुछ ऐसे मनुष्य होते हैं जो परिश्रमसे कमाये हुवे धनको कुदानमें देते हैं और कुपात्रों या अपात्रोंको देते हैं जिस वृथा व्यय और अपव्ययका फल सुखके स्थानपर दुःख और पुण्यके स्थानपर पाप ही होता है। सत् शिक्षा मिल जानेसे कर्तव्य, अकर्तव्य, कुकर्तव्य, पात्र अपात्र और कुपात्रका ज्ञान हो जानेसे ऐसे दानप्रेमी परन्तु अशिक्षित मनुष्य सुधरकर सत् मार्गपर लग सक्ते हैं।

(४) कुछ ऐसे पुरुष हैं जो न तो बेईमानीसे धन कमाते हैं और न ईमान्दारीसे । कमाई करना उनको सिखाया ही नही गया । ऐसे असंख्य मनुष्योंका बोझ इस देशकी समाजपर ही है । समाजको उल्लु बना कर ही ऐसे लोग अपना निर्वाह कर रहे हैं । (५) समाजमें कुछ ऐसे भी मनुष्य हैं जो न्यायपूर्वक द्रव्य कमाते हैं और उसे परोपकार, देशसेवा, जाति सेवामें और अपने निजके कामोंमें भी खर्च करते हैं। (६) परन्तु कुछ मनुष्य ऐसे भी हैं जो अपने लाभके लिये किसीको भी दुःख और कष्ट नहीं देना चाहते हैं सब पापोंसे बचते हुए अपना जीवन विताये हैं और अपना तन मन और सब धन परोपकार, जातिसेवा और देशसेवामें लगा देते है । इस देशमें ऐसे महात्मा पुरुष नहीं हैं परन्तु अन्य देशोंमें ऐसे सज्जनोंकी कमी नहीं है । ऐसे ही महात्मा देशमें अधिक होनेसे देशका सच्चा सुधारा और वास्तविक उन्नति हो सक्ती है ।

(५) संस्थाओंके पास उत्तम निर्लोभी और धर्मज्ञ प्रचारकोंका न होना।

(६) संस्थाओंको अपनी सहायता और रक्षाके उचित उपायोंका ज्ञान नहीं होना ।

(७) संस्थाओंका अपव्यय अथवा अधिक व्यय करना ।

(८) संस्थाओंका अनुभवी उद्योगी कार्यकर्ताओंकी क़द्र न करना और उनकी आज्ञा न मानना ।

(९) कार्यकर्ताओंकी कार्यकर्ताओंसे और संस्थाओंकी संस्थाओंसे अनबन रहना ।

(१०) उत्तम और निर्लोभी कार्यकर्ताओंका नहीं मिलना । देशहितैषियोंको संस्थाओंको हानि पहुँचानेवाले इन सब कारणोंको हटाने और मिटानेका यत्न करना चाहिये ।

प्रसंगवश संस्थाओंकी सहायता और रक्षा करनेके भी कुछ उपाय यहाँ लिखे जाते हैं ।

(१) प्रत्येक संस्थाके कार्यकर्ता दो तरहके होने चाहिये [क] सहायक और [ख] प्रवंधकर्ता । सहायक कार्यकर्ता केवल सहायताके उत्तम और नये नये उपाय सोचें और उन्हें काममें लावें । वस वे रातदिन यही काम करें-ग्रामोंसे चंदा जमा करके लावें या संस्थाके रुपयेसे व्यापार करें या कुछ और उपायमें रातदिन लगे रहें । और अन्य काम इनको नहीं देना चाहिये । तभी ये अपने काममें उन्नति करके दिखा सक्ते हैं। एक आदमीसे एक ही काम उत्तमता पूर्वक होसक्ता है । प्रवंध करनेवाले कार्यकर्ता पुराने प्रवंधको सुधारते रहें। आगेके लिये प्रवंधके उत्तम नियम बनाकर उनपर चलें। संस्थाओंकी सहायतार्थ आया हुवा द्रव्य वड़ी सावधानीसे खर्च करें और एक पैसेकी जगह एक धेलेमें ही उत्तमतापूर्वक काम बनावें। जहाँ तक हो सके प्रत्येक कार्य विना द्रव्य ही चलानेकी कोशिश करना चाहिये या वहुत ही थोड़ा द्रव्य खर्च करना चाहिये, क्योंकि द्रव्यका जमा करना वहुत कठिन है परन्तु उसे खर्च कर देना सहल है। द्रव्यकी कद्र नहीं करनेसे ही इस समय भारतवासी दुःख पा रहे हैं। प्रवंधकर्ताओंको प्रवंध करनेके सिवाय और दूसरा काम कुछ न करना चाहिये। एक ही कामके करनेमें उन्हें अपनी सव शक्तियें लगा देनी चाहिये । तभी वे उस कामको उत्तमतापूर्वक कर सक्ते हैं ।

(२) संस्थाओंकी सहायताके वास्ते धन नहीं माँग कर भोजन वस्त्रादिक सामग्री ही माँगे अन्न वस्त्रादिक द्रव्योंको देते हुवे लोगोंको इतना कष्ट व दुःख नहीं होता जितना दुःख और कष्ट थोड़ासा धन देनेपर होता है। हैसियतके अनुसार अन्न वस्त्रादि तो सामान्य स्थितिका मनुष्य भी प्रसन्नतासे दे सक्ता है । परन्तु रुपया--द्रव्य देते हुवे धनवान् भी घवड़ाता है । द्रव्यकी आवश्यकता पड़नेपर किसी देशभक्त जातिसेवक और परोपकारी सेठ साहूकारसे नम्रतापूर्वक याचना करनी चाहिये ।

(३) प्रत्येक संस्थाको ऐसी पुस्तकें प्रकाशित करते रहना चाहिये जिनको पढ़कर लोग संस्थाओंके लाभों और दानके महत्वको जानें, संस्थाओंको सहायता देनेकी तरफ झुकें।

(४) द्रव्यकी सहायतार्थ संस्थाओंको व्यापार भी करना चाहिये। अथवा कोई कारखाना खोलकर अपनी सहायता आप करनेकी कोशिश करना चाहिये। यह युक्ति किसीको सताये विना ही, किसीसे याचना किये विना ही उत्तम फल देनेवाली और लाभदायक है। जो संस्थाएँ इसी मार्गसे चल रही हैं वे अपने सहारे आप खड़ी होकर आनंदपूर्वक देशसेवा कर रही हैं और जिन्होंने बड़े भारी ध्रुव फंड़ बना लिये हैं बस सदाके लिये वे अमर हो गई हैं और अब उन्हें दीनतापूर्वक सबके सन्मुख अपना हाथ पसारते रहनेकी ज़रूरत नहीं है।

(५) अन्य देशोंमें विवाह, शादी, ग़मी अथवा और किसी अवसरपर दान देकर तो इन संस्थाओंको सहायता दी ही जाती है, परन्तु संस्थाओंकी रक्षा और सहायताका दूसरा भी उचित प्रबंध किया गया है। वहाँ संस्थाएँ द्वार द्वार माँगती हुई नहीं फिरती हैं, परन्तु संस्थाओंकी रक्षा और सहायता करना परम धर्म समझकर प्रत्येक मनुष्यकी आमदपर दान-कर अथवा धर्म-कर लगा दिया गया है। इस करको इकट्ठा करनेके लिये और संस्थाओंकी सहायतामें ख़र्च करनेके लिये एक महकमा बना हुवा है। यही महकमा संस्थाओंके सब प्रबंध आमद और ख़र्चकी देख भाल रखता है और सबको उचित सहायता पहुँचाता रहता है। इसी तरह देशमें भी प्रत्येक मनुष्यकी आमदपर प्रतिरुपया पीछे अपना आध आना या पाव आना दान कर या धर्मादा लगाकर उसको एक स्थानपर इकट्ठा करें और उससे प्रत्येक संस्थाको उचित सहायता देवें। यह काम पंचायतों और बिरादरियोंके करनेका है। यह माना कि हिन्दुस्थानमें फूट अधिक होनेसे यह नियम जारी करना कठिन ही नहीं

किन्तु असंभव ही जान पड़ता है। तो भी यदि सब लोग इस नियमको न पालें तो जो धर्मात्मा पुरुष इसे स्वीकार करें उनसे ही प्रण कराकर एक तहरीरपर सबके हस्ताक्षर करा लिये जावें, और कार्य प्रारंभ कर दिया जावे। ऐसा रिवाज़ पहिले सब स्थानोंपर था और अब भी कहीं कहीं पाया जाता है। और धर्मादेके नामसे यह टेक्स मशहूर है और प्रत्येक माल बेचनेवाले और माल लेनेवाले व्यापारीसे उसी दम वसूल कर लिया जाता है। परन्तु गाँठकी बुद्धि न होनेसे इय सब रूपयेका सदुपयोग न करके केवल दुरुपयोग ही किया जा रहा है। जिनको इस रूपयेसे सहायता मिलना चाहिये था वे तो कोरे ही रह जाते हैं और संण्डे मुसंडे--अपात्र कुपात्र ज़रूरतसे भी अधिक सहायता पा रहे हैं।

(६) संस्थाओंको बहुत थोड़े खर्चेसे अपना काम चलाना चाहिये।

(७) देशमें धार्मिक विद्याका प्रचार करके लोगोंका ध्यान संस्थाओंकी तरफ खींचना चाहिये।

(८) संस्थाओंके हितैषियोंको चाहिये कि वे कुछ रुपया संस्थाओंको दान देवें--परन्तु वह दान दिया हुवा रुपया संस्थाओंमें न भेज कर जो धंधा या व्यापार अपने यहाँ होता हो उस रुपयेको उसी धंदे या व्यापारमें लगावें। इस प्रकार थोड़े ही दिनोंमें वह रुपया बहुतसा हो जायगा और संस्थाओंको सहजमें एक बड़ी रकम ध्रुव फंड बनानेके लिये मिलेगी।

–पुरानी संस्थाओंका प्रबंध सुधारना और समयकी आवश्यकतानुसार नई संस्थाएँ स्थापित करना–

हमारी समझसे सब विद्यालयों और हाईस्कूलोंको नगरसे चार या पाँच मील दूरपर जंगलमें लेजा कर रक्खै। मकान बनानेके लिये रुपया न होनेपर फूस या टीनका छप्पर छाकर सर्दी, धूप और मेहसे बचनेका प्रबंध कर लें। बच्चोंके रहनेको उसी जगह एक कम लागतका बोर्डिंग बनवा दिया जावे। इन विद्यालयोंमें केवल आठ सालकी आयु तकके वे बच्चे भरती किये

जायँ जिनका विवाह नहीं हुवा हो। अधिक उम्रके बच्चे शहरमें रहकर बाज़ारों और गलियोंकी हवा खानेसे बिगड़ जाते हैं। ऐसे बिगड़े हुवे यहाँ न भरती किये जावें, नहीं तो एक मछली तालावको गंदा कर देगी। जितने बच्चे इन विद्यालयोंमें पढ़ते हों उन्हें ग्राम अथवा नगरमें नहीं जाने दिया जावे। और न किसी शहरवालेको इनसे मिलने दिया जावे। या तो प्रत्येक बच्चेके घरसे प्रतिदिन पका हुआ भोजन वहाँ मँगवा लेवें या वहीं सब बच्चोंका भोजन एक साथ बनवानेका कुछ प्रबंध करें। यदि किसी बच्चेके माँबाप अपने बच्चेसे मिलना चाहें तो वहीं आकर थोड़ी देर तक मिल कर उसी दिन वापिस लौट जावें। अध्यापक लोग भी शहरमें अधिक न जावें उसी जंगलमें अपने लिये कुटियें बनाकर उनमें रहा करें। और सब अध्यापक लोग यदि त्यागी वैरागी हों तो श्रेष्ठ है। बच्चोंको बीस वर्षकी उम्र तक यहाँ शिक्षा मिलनी चाहिये।

जो बच्चे आठ वर्षसे अधिक आयुवाले हैं और जिनका विवाह हो गया है ऐसे शहरके बिगड़े हुवे बच्चोंके लिये शहरमें एक स्कूल होना चाहिये। परन्तु छोटे और अविवाहित लड़के इस शहरी विद्यालयमें बिलकुल नहीं भरती करने चाहिये, नहीं तो फिर जंगलोंमें दुःख उठाकर पढ़नेको अपने बच्चोंको जंगलमें बने हुवे विद्यालयोंमें कोई नहीं भेजेगा। छोटी छोटी पाठशालाएँ बस्तीके बाहर या बस्तीके बीचमें बनाई जावें। यहाँ आठ वर्षकी आयुसे छोटी आयुवाले बच्चोंको प्रारम्भिक शिक्षा दी जावे या ये छोटे बच्चे अपने अपने घरपर ही पढ़ाये जावें और आठ वर्षके होते ही जंगलके विद्यालयोंमें शिक्षा पानेको भेजे जावें। देखा गया है कि बचपनमें तो बच्चोंको अपने हित अहित—हानिलाभका कुछ ज्ञान होता ही नहीं। इसीलिये वे अपना बचपनका समय तो खेलकूदमें बिता देते हैं। और उस्ताद या मातापिता मारपीट करके भी शिक्षा देवें तब भी बच्चे लिखना पढ़ना और शिक्षा पाना पसंद नहीं करते हैं और खेल कूदमें ही

समय गँवा देते हैं। परन्तु जब गृहस्थीका बोझा सिरपर पड़ता है, और जब समझदार होते हैं तब वे बहुत पछताते हैं और अज्ञानतामें फँस कर जो भारी चूक की है उसके लिये सदा अपनी निंदा करते रहते हैं। इस जवानीके समयमें वे कुछ कला, कौशल्य, इल्म और हुनर सीखना चाहते हैं ताकि कमाने खानेके योग्य बनकर शीघ्र ही अपना और अपने घर-वालोंका पालन पोषण कर सकें। परन्तु ऐसे विद्याके प्यासे समझदार नोजवा-नोंके लिये उन्हें किसी लायक बना देनेको कुछ भी प्रबंध नहीं है। ऐसे लोगोंके लिये सब जगह रात्रिशालाएँ—नाईटस्कूल, आर्टस्कूल, बनवाने चाहिये। जिनमें गृहस्थोंको व्यापार, नौकरी, कला, कौशल इत्यादिकी शिक्षा दी जावे। इस तरह गुरुकुलकी पढ़ाई समाप्त करके गृहस्थी बन जानेवाले भी अपनी शिक्षा—विद्या अधिक बढ़ा सक्ते हैं।

स्त्रियों और कन्याओंके लिये भी सब प्रबंध ऊपर कहे अनुसार होने चाहिये। विधवाओंकी इस समय बड़ी दुर्दशा है। इनकी मूर्खता और इनके दुराचारके कारण सब भारतवासियोंको नीची गर्दन करके लज्जित और कलंकित होना पड़ता है। हमारे विचारसे इन विधवाओंको धर्मशास्त्रकी शिक्षा देकर ब्रह्मचारिणी और सदाचारिणी बनाया जावे और इनसे देशसेवा और जातिसेवाके उत्तमोत्तम कार्य लिये जावें। जैसे कन्याओंको पढ़ाना, उनको गृह प्रबंधकी शिक्षा देना, गुरुकुलोंकी कन्याओंके लिये भोजन बनाना, वस्त्र सीना, मकान साफ करना, छोटे बालकोंको शिक्षा देना, घरका सब काम करना इत्यादि। यदि विधवाओंसे ये कार्य लिये जावें तो शीघ्र ही देशोन्नति और समाजोन्नति हो सक्ती है। निकम्मी होनेसे, बेकाम बैठी रहकर बुरे विचारोंके पैदा होनेसे, अशिक्षित होनेसे, कुसंगतिमें रहनेसे ही विधवाएँ नष्ट भ्रष्ट हो जाती हैं। विधवाओंको शिक्षित बनाकर उन्हें कोई काम करनेमें लगी रखें तो उनके पतित होनेका अवसर कभी भी न आ सकेगा। परन्तु विधवाओंको शिक्षित बनाने और समाजसेवा

और देशसेवाके योग्य बनानेके लिये स्थान स्थानपर विधवा-आश्रम स्थापित करनेकी आवश्यकता है। यदि यह देश अपनी इज्जतमें धब्बा लगने और बट्टा लगनेसे बचना चाहता है, विधवाओंसे कुछ काम लेकर अपनी दशा सुधारना चाहता है और दीन हीन विधवाओंपर तरस खाकर उनके दुःखमयी जीवनको सुखमयी बनाना चाहता है तो इसे शीघ्र ही प्रत्येक स्थानपर विधवा-आश्रम खोलकर विधवाओंपर और अपनेपर भी दया करनी चाहिये। परन्तु विधवा-आश्रम, बस्तीसे अलग जंगलमें बनाने श्रेठ हैं। इसी प्रकार देशकी दशा सुधारनेको और और नई संस्थाओंकी स्थापना करनी चाहिये।

—उपसंहार—

भाइयो! देशोन्नति, जात्युन्नति और धर्मोन्नति सब देशकी संस्थाओं-पर ही अवलम्बित है। जिस देशमें संस्थाएँ उत्तम और लाभकारी हैं वही देश उन्नतिके शिखरपर पहुँचा हुवा है। जैसे अमेरिका, जापान, इंग्लेण्ड आदि। परंतु जिस देशमें संस्थाएँ आवश्यकतासे भी कम हैं और जहाँ उन इनीगिनी संस्थाओंका भी उचित रक्षण और प्रबंध नहीं हो सक्ता है वह देश कदापि उन्नति नहीं कर सक्ता है।

हे देशवासियो! हे जातिके वीरो!! हे भारतहितैषियो!!! अज्ञान और आलस्यकी नींदको शीघ्र ही त्यागो और अपने देशकी उन्नति करनेवाली संस्थाओंकी तन-मन-धनसे रक्षा करो और उन्हें तुरन्त ही सुधारकर यथोचित सहायता दो। संस्थाएँ ही धार्मिक उन्नति और लौकिक उन्नति करनेवाली हैं, कुरीतियोंको हटाकर सुरीतियों और सदाचारका प्रचार करनेवाली हैं, अविद्या और अज्ञानको हटाकर विद्या और ज्ञानको देशमें फैलानेवाली हैं और सच्चे सुखका मार्ग दिखाकर उन्नति पथपर लगानेवाली हैं। अतः संस्थाओंकी सहायता स्वयं करना और दूसरोंको सहायता करनेकी प्रेरणा करना प्रत्येक मनुष्यका उत्कृष्ट कर्तव्य और सर्व श्रेष्ठ धर्म है।

—क्षमा करिये—

पाठक गण ! जिस विषयपर मैंने यह पुस्तक लिखनेका साहस और प्रयास किया है वह विषय बहुत ही गूढ़ और कठिन है। ऐसे विषयपर कोई उत्तम पुस्तक लिखना मुझ अल्पज्ञकी शक्तिसे बाहर है। यह कार्य आप जैसे विद्वानोंका है। इस तुच्छ पुस्तकमें इस विषयपर कोई तात्त्विक और मार्मिक विवेचन नहीं पाकर आप लोग मेरी मूर्खतापर हँसेंगे और मेरी ढीठतापर क्रोधित होंगे। परन्तु, सज्जनो ! न तो मैंने यह पुस्तक अपनी पण्डिताई जतलानेके लिये बनाई है, न यह पुस्तक मैंने अपनेको आप लोगोंसे बड़ा समझकर आपको शिक्षा करने और नसीहत देनेको बनाई है और न यह विचार कर ही यह पुस्तक लिखी गई है कि आप लोग इस पुस्तकको आदरकी दृष्टिसे देखें और इस समयकी आदरणीय पुस्तकोंमें इसकी गणना करें। परन्तु यह पुस्तक रचकर आप जैसे महानुभाव सज्जनोंकी सेवामें यही निवेदन किया गया है कि आप इस विषयपर लक्ष देकर इस विषयकी प्रभावशाली और लाभदायक पुस्तकें रचें और संस्थाओंका सुधार करवाकर इस अधःपतित देशका उद्धार करें। क्योंकि यह कार्य आप जैसे विद्वान् सज्जनोंसे ही सम्पादित हो सक्ता है। हमारे देश भाइयोंकी दृष्टि गुणोंपर तो बहुत कम पड़ती है परन्तु क्षुद्रसे क्षुद्र दो[illegible] ही पड़ती है। यद्यपि यह पुस्तक देशकालका विचार करके [illegible]थ लिखी गई है तो भी अज्ञानवश इसमें कई त्रुटियों और [illegible]ना बहुत सम्भव है। क्योंकि गलती करना इन्सानका काम है [illegible]नी भूलें अपने आपको नहीं दिखती हैं। मैं अल्पज्ञ और अशिक्षित हूँ, मुझसे इस पुस्तकके रचनेमें कई भूलें हो जाना और त्रुटियोंका रह आना सम्भव है जिनके लिये सभी सज्जनोंसे और देश बंधुओंसे क्षमा चाहता हूँ। मुझे एक अज्ञानी बालक समझकर सज्जनगण मेरा अपराध क्षमा करिये। क्योंकि सज्जनोंका तो गुण क्षमा और दया ही है। और पत्रद्वारा

मुझे अपनी भूलों और त्रुटियोंको सूचित करनेकी कृपा करिये जिसके लिये मैं सज्जनोंका आभार मानूँगा और पुस्तककी द्वितीय वृत्तिमें उन भूलों और त्रुटियोंको सुधारने और शोधनेका यत्न करूँगा।

क्षमा किये जानेका प्रार्थी सज्जनोंका कृपापात्र

समाजसेवक—दौलतराम बी० जे०

झालरापाटन निवासी.